श्रीपाद मुरारि गुप्त

का

# 'कड़चा'

# श्री श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत

हिन्दी प्रस्तुति

एवं

सम्पादन

**ब्रजगोपाल दास अग्रवाल**

**रसमंजरी**

प्रतापनगर-साँगानेर, जयपुर

HPD

# श्रीपाद मुरारि गुप्त

## का

# 'कड़चा'

(श्री श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत)

सम्पादन एवं हिन्दी प्रस्तुति

**ब्रजगोपाल दास अग्रवाल**

●

'रसमंजरी'

51/60, प्रतापनगर-साँगानेर (जयपुर)

HPD

# श्रीपाद मुरारि गुप्त का 'कड़चा'

## श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत

रसमंजरी संस्करण

**ब्रजगोपाल दास अग्रवाल**

★ प्रथम संस्करण : 2017 ★

प्रकाशक :

**श्रीमती सुधा दास अग्रवाल**

रसमंजरी, 51/60, प्रतापनगर,

साँगानेर (जयपुर) 302033

मुद्रक :

**कृष्णा ग्राफ एण्ड प्रिंट्स**

109/306-बी, रामकृष्णनगर, कानपुर-208012

# समर्पण

---

परम गुरुनिष्ठ, साधु-सन्त सेवी,
भक्तिरस-ग्रन्थों के प्रचारक
जयपुर-वासी वैष्णव
**श्रीबलदेव राम गुप्ता**
को सादर

— ब्रजगोपाल

!! श्रीगणेशाय नमः!!

# सम्पादक का निवेदन

बचपन में सुना था कि महाप्रभु चैतन्य देव (निमाइ) जब पाँच वर्ष के थे, उन्होंने अपने पड़ोसी मुरारि गुप्त की भोजन-थाली में पेशाब कर दिया था। हम बड़े हुए तो पढ़ा कि इन्हीं गुप्त महाशय ने महाप्रभु की कृपा प्राप्त कर संस्कृत में महाप्रभु का चरित्र लिखा–'**श्रीकृष्णचैतन्य चरितामृत**'। यह कृति 'कड़चा' नाम से समधिक प्रसिद्ध हुई।

मन में गुप्त महाशय और उनके कड़चा को लेकर एक कौतूहल बना रहा। श्रीगुरु-वैष्णव की कृपा से एक दिन इसके आस्वादन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अति दुर्लभ वस्तु है। क्यों? इसमें दुर्लभता क्या? महाप्रभु का चरित्र तो कितने ही भाग्यवान् जनों ने कितने ही प्रकार से लिपिबद्ध किया है। ठाकुर वृन्दावन दास, कविराज कृष्णदास, ठाकुर लोचनदास ने। महात्मा शिशिर कुमार घोष, अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त, पण्डित रामानन्द ने.....! हिन्दी, अँगरेजी, उर्दू, गुरुमुखी, तमिल आदि भाषाओं में बहुतों ने लिखा है, पर प्राय सभी ने या तो पहले से उपलब्ध सामग्री को आधार बनाकर लिपिबद्ध किया है, या फिर किसी से सुनकर लिखा है। कल्पना कीजिये, आप अपने किसी पड़ोसी के बच्चे को उसके जन्म से जानते हैं; उसकी एक-एक बात के प्रत्यक्षदर्शी हैं। यदि आप उसका जीवनचरित्र लिखें, तो वह बड़ा अन्तरंग और जीवन्त होगा। महाप्रभु के ऐसे ही भाग्यवान् पड़ोसी ये श्रीपाद मुरारि गुप्त थे।

श्रीगुप्त ने श्रीजगन्नाथ मिश्र और शची देवी के नवजात शिशु को देखा, देखते रहे, और एक दिन.... उसके लीलाचरित्र का वर्णन आरम्भ कर दिया।

जिन दिनों हमारी पाती 'श्रीगौर सुन्दर' का प्रकाशन चल रहा था, हमें लगा कि इस ऐतिहासिक अपूर्व कृति का आस्वादन पाती के पाठकों को भी कराया जाय। आम पाठक संस्कृत नहीं जानता, इसलिये हमने 'कड़चा' का भाव-अर्थ ही पाती में दिया।

'श्रीगौरसुन्दर'-72 में गौर-परिकर श्रीपाद मुरारि गुप्त का संक्षिप्त चरित्र देकर कड़चा का शुभारम्भ किया, जो धारावाहिक रूप से पाती क्रमांक 101 तक चलता रहा। 'कड़चा' को पढ़कर पाती के पाठकों को एक विशेष तृप्ति का अनुभव हुआ और माँग उठी कि यह सामग्री वृहत्तर पाठक-वर्ग को उपलब्ध कराई

जाय। श्रीगुरु-गौरांग की कृपा-प्रेरणा से उन तीस पातियों की सामग्री यत्र-तत्र आवश्यक संशोधन परिवर्द्धन के साथ आज भक्तसमाज के आगे प्रस्तुत करते हुए विशेष प्रसन्नता है।

विलम्ब से ही सही, अब वह कड़चा पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है। इसका बहुत-कुछ श्रेय जाता है कानपुर के गौर-भक्त श्रीविपिन प्रकाश अग्रवाल को। उनके प्रेम-कलह का ही परिणाम है कि यह कृति पाती से निकलकर पुस्तक रूप में आ गई। हम विपिनजी के साथ-साथ श्रीकन्हैया वाजपेयी, श्रीचन्द्रशेखर शर्मा, श्रीगोपालजी अग्रवाल, श्रीनितिन अग्रवाल, सुशीलजी शर्मा, श्रीमती नूपुर अग्रवाल, श्रीमती वर्षा तिवारी, डॉ० निशा शुभ, श्रीमती उपमा गर्ग को भी स्मरण करते हैं। ये सभी प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से हमें लेखन के लिये प्रेरित-अनुप्राणित करते रहते हैं। सभी को साधुवाद।

हम लोग अपने प्राकृत चक्षुओं से श्रीपाद गुप्त को नहीं देख पा रहे, किन्तु वे आज निःसन्देह, निश्चय ही दो प्रकार से हमारे आगे विराजमान हैं। एक, अपने 'कड़चा' में। दो, वृन्दावन धाम के वनखण्डी मोहल्ले के छोटे-से आवास में, अपने सेवित श्रीविग्रहद्वय के प्राणों में! ये श्रीविग्रह 'पिसिमा के निताइ-गौर' नाम से प्रसिद्ध हैं।

प्रिय पाठकवृन्द, 'कड़चा' पढ़िये और, अवसर मिलते ही उक्त ठाकुरों को निहारिये। ठाकुर-मन्दिर से छोटी-सी पुस्तक 'पिसिमा के निताइ-गौर' भी खरीद लीजिये। उसमें पता चलेगा कि गुप्तजी के ये कौतुकी ठाकुर बंगाल से वृन्दावन कैसे पधारे।

श्रीललिता सप्तमी
28.08.2017

**— ब्रजगोपाल दासअग्रवाल**
'कृपा-कना',
चार सम्प्रदाय के पास
गौरानगर, वृन्दावन-281121
मो. 9368558136

## गौर-परिकर मुरारि गुप्त

प्राय सवा पाँच सौ वर्ष पूर्व की बात। नवद्वीप के जिस मोहल्ले में चैतन्य महाप्रभु के पिता श्रीजगन्नाथ मिश्र निवास करते थे, उसी में रहते थे वैद्य मुरारि गुप्त। महाप्रभु से पन्द्रह वर्ष बड़े। वे सुप्रसिद्ध गंगादास पंडित के व्याकरण-छात्र थे और आयुर्वेद चिकित्सक थे। धीर-गम्भीर, मृदुभाषी, परोपकारी होने के कारण सभी के प्रिय। अद्वैत आचार्य, श्रीवास पंडित, चन्द्रशेखर आचार्य, जगन्नाथ मिश्र आदि विभूतियों के साथ उनकी बड़ी घनिष्ठता थी।

मिश्रजी के पड़ोसी होने के कारण मुरारि गुप्त ने महाप्रभु (बालक निमाइ) को गोद में खिलाया और उनकी नवद्वीप-लीलाओं को प्रत्यक्ष देखा। वे योगवाशिष्ठ से प्रभावित होकर स्वयं को भगवान् से अभिन्न समझते थे, भगवद् भक्ति नहीं मानते थे, पर निमाइ की कृपा-शक्ति से वे शीघ्र ही ज्ञानमार्ग त्यागकर भक्तिरसामृत-सिन्धु में डूब गये।

श्रीमन्महाप्रभु के प्रति मुरारि गुप्त की ऐसी अतुलनीय भक्ति थी कि वे महाप्रभु की इहलीला-संवरण की कल्पना मात्र से व्यथित हो उठे। प्रभु इस प्रपंच जगत् को त्यागकर एक दिन तो अपने धाम को चले ही जायेंगे, तब मैं उनकी विरह-वेदना कैसे सहन करूँगा? वह दिन न देखना पड़े, यह सोचकर मुरारि ने आत्महत्या करने के लिये एक छुरी तैयार कराई। अन्तर्यामी प्रभु ने उन्हें वह न करने दिया। (चै०भा० मध्य 20)

श्री देवकीनन्दन दास अपनी 'वैष्णव-वन्दना' में लिखते हैं—

"**वन्दिबो मुरारि गुप्त भक्तिशक्तिमन्त ।**
**पूर्व अवतारे जाँर नाम हनुमन्त ।।**"

(भक्तिशक्ति से परिपूर्ण मुरारि गुप्त की वन्दना करता हूँ, त्रेता में जिनका नाम हनुमान था)

यही परिचय दिया है कवि कर्णपूर ने, 'गौरगणोद्देशदीपिका' में—"मुरारिगुप्तो हनुमानङ्गदः श्रीपुरन्दरः...." (जो पहले हनुमान थे, वे अब मुरारि गुप्त हुए...)

एक दिन महाप्रभु ने कहा—"मुरारि, तुम दास्यभाव से रघुनाथ-उपासना करते हो। मधुरभाव से कृष्णोपासना कहीं श्रेष्ठ है। कृष्ण-भजन करो।"

मुरारि बोले–"प्रभु, मैं आपका दास हूँ। जो कहेंगे, प्राण देकर भी करूँगा।" कह तो दिया, पर पूरी रात यह सोचकर नींद नहीं आई कि उपास्य देवता श्रीराम को कैसे छोड़ूँगा। तड़के ही महाप्रभु के पास पहुँचे और श्रीचरणों में गिरकर रोते-रोते बोले–"प्रभु, श्रीराम को नहीं छोड़ सकता। मैं आज्ञापालन नहीं कर सका, ऐसी कृपा कीजिये कि आपके आगे प्राण त्याग दूँ।"

महाप्रभु परम प्रसन्न होकर डबडबाई आँखों से आलिंगन कर बोले– "साधु मुरारि! साधु! तुम्हारी परीक्षा के लिये ही वह सब कहा था। तुम साक्षात् हनुमान हो। तुम्हारे कारण ही तो श्रीराम की बड़ाई है। तुम्हारे बिना उनका क्या? पर तुम्हारी एकनिष्ठ रामभक्ति के पुरस्कार के रूप में मेरे वर से तुम्हारे हृदय में व्रज के मधुर रस की स्फूर्ति होगी।"

श्रीकृष्णदास कविराज इसी वर की ओर संकेत करते हैं–"श्रीमुरारि गुप्त, गुप्त प्रेमेर भाण्डार" (चै.च. आदि 10/49) अर्थात् मुरारिगुप्त गुप्तप्रेम के भण्डार हैं। यह गुप्तप्रेम व्रज का मधुर रस है, कोई संदेह नहीं। महाप्रभु की कृपा से मुरारि ने गोपीभाव और गौर-नागरी भाव से बंगला में बहुत-से पदों की रचना की।

श्रीमन्महाप्रभु ने मुरारि गुप्त के साथ अनेक दिव्य लीलायें कीं-पाँच वर्ष के निमाइ ने मुरारि की थाली में मूत्र त्यागकर हरिभक्ति का उपदेश दिया (चैतन्यमंगल आदि०); चतुर्भुजरूप में मुरारि के कंधे पर चढ़कर आँगन में घूमे (चै.च. आदि० 17); वराह-आवेश में मुरारि के घर जाकर वेदगुह्य तत्त्व प्रकट किये (चै.भा. मध्य 3); श्रीवास-अंगन में महाप्रभु के आह्वान पर मुरारि गरुड़-आवेश में दौड़े गये (चै.भा. मध्य 20); श्रीरामरूप में दर्शन दिये (चै.भा. मध्य 10); मुरारि का रामाष्टक सुना (चै.भा. शेष 4); अदृश्यरूप से मुरारि का घृतान्न खाकर जो अजीर्ण हुआ, उसकी औषधि के रूप में मुरारि के घर जाकर उनके पात्र का जलपान किया (चै.भा. मध्य 20)....।

मुरारि गुप्त ने महाप्रभु के लीलाचरित्र पर संस्कृत काव्यग्रन्थ भी लिखा, जो 'श्रीकृष्णचैतन्य-चरितामृतम्' नाम से जाना जाता है और 'कड़चा' (डायरी, रोजनामचा) के रूप में समधिक प्रसिद्ध है। श्रीमृणालकान्ति घोष ने चैतन्याब्द 445 में (सन् 1930के करीब) इस

ग्रन्थ के तृतीय बंगला संस्करण में लिखा था—

"श्रीगौरसुन्दर का संग मिला, तभी से मुरारि ज्ञानचर्चा त्यागकर भक्तिरस में अभिषिक्त हो गये थे। ऐसी अवस्था में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसके प्रत्येक पद में भक्ति की मधुर झंकार सुनी जाती है। समग्र ग्रन्थ ही भक्ति की भाषा से अनुप्राणित है—अति कोमल, अति मधुर। पाठ करते ही लगता है कि यह गौर-भक्ति का अनन्त अफुरन्त पीयूषमय प्रस्रवण है।"

तेरह वर्ष बाद 'कड़चा' के चतुर्थ बंगला संस्करण की अवतरणिका में श्री हरिदास दास ने लिखा—

"यह कड़चा ही श्रीगौरांगलीला का आदि और प्रामाणिक ग्रन्थ है। प्रत्यक्षदृष्ट लीला-चरित्र अंकित होने से इसमें बिन्दुमात्र भी अतिरंजन या स्वकपोलकल्पितत्व की आशंका नहीं। भाषा भी अति मधुर और प्रांजल है; स्थल-विशेष की रचना-परिपाटी अति प्रशंसनीय है।"

महात्मा शिशिर कुमार घोष का मत है—"श्रीगौरांग-अवतार के सम्बन्ध में जैसा प्रमाण मुरारि का कड़चा है, वैसा बुद्ध मोहम्मद ईसा अथवा किसी भी धर्म के सम्बन्ध में नहीं है।" (अ.नि.च. 3/4)

ठाकुर वृन्दावनदास, श्रीकृष्णदास कविराज, कवि कर्णपूर, ठाकुर लोचनदास आदि परवर्ती चैतन्य-चरितकारों ने मुरारि गुप्त के 'कड़चा' को अपने ग्रन्थों का आधार बनाया। कवि कर्णपूर ने अपने लीलाग्रन्थ में लिखा है—

**"बद्धाञ्जलिः शिरसि निर्भरकाकुवादै-**
**र्भूयो नमाम्यहमसौ स मुरारिसंज्ञं ।**
**तं मुग्धकोमलधियं ननु यत्प्रसादा-**
**च्चैतन्यचन्द्रचरितामृतमक्षिपीतं ।।"**

(मैं मस्तक पर अंजलि बाँधकर निरतिशय काकुवचनों के साथ मनोहर-कोमलबुद्धि मुरारि नामक उन महात्मा को पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से श्रीचैतन्यचन्द्र का चरितरूपी अमृत मेरे अक्षिपीत अर्थात् नेत्रगोचर हुआ है।)

'कड़चा' की रचना के विषय में महात्मा शिशिरकुमार घोष बताते हैं कि चैतन्यदेव दक्षिण भारत की यात्रा से लौटकर जगन्नाथपुरी आ गये,

तो बंगाल के भक्तजन उनके दर्शनार्थ पुरी गये। मुरारि गुप्त भी गये। महाप्रभु के अन्यतम परिकर दामोदर पंडित वहाँ थे ही। उन्होंने गुप्त महाशय से कहा—"प्रभु की आदि लीला केवल तुम्हीं अच्छी तरह जानते हो। जीवों के उपकार के लिये अब इसे लिपिबद्ध करो।" (अ.नि.च. 3/4)

इस विषय में 'कड़चा' (1/1/9) से पता चलता है कि श्रीवास पंडित के कहने पर मुरारि गुप्त ने महाप्रभु का चरित्र आरम्भ किया।

'कड़चा' में ही अन्यत्र (2/4/22-26) देखते हैं कि स्वयं महाप्रभु ने परोक्षरूप से गुप्त महाशय को अपना चरित्र लिखने का आदेश दिया। प्रभु ने कहा-"मुरारि, हरि का प्रेम पाने की स्पृहा हो, तो अध्यात्म संगीत त्यागकर श्रीहरि का गुणगान करो।" यह सुनकर पास बैठे श्रीनारायण गुप्त नामक वैद्य ने प्रभु से कहा—इन्हें ऐसी आज्ञा दीजिये कि आपके भक्त ये मुरारि स्नेह-सिन्धु गुरुदेव का गुणगान कर सकें। इस पर प्रभु बोले—'यही होगा। यह वैद्यराज (मुरारि) जो लिखेंगे, वही सुसत्य होगा।" स्पष्ट है कि मुरारि के गुरु महाप्रभु ही हैं और उनके विषय में जो कुछ लिखा है, वह सुसत्य है।

'कड़चा' (1/2/15-20) से यह भी ज्ञात होता है कि दामोदर पंडित द्वारा प्रेरित किये जाने पर मुरारि गुप्त ने गौरांग-कथा आरम्भ की। मंगलाचरण और प्रस्तावना के पश्चात् आरम्भ हुईं दामोदर की जिज्ञासायें और मुरारि के उत्तर। इस प्रकार प्रश्नोत्तर रूप में रचा गया यह चैतन्य-चरित्र।

किसके आग्रह-अनुरोध पर, किसकी इच्छा-अनुप्रेरणा से 'मुरारि गुप्त का कड़चा' रचा गया, और कब हुई उसकी रचना-ये बातें गौण हैं। बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह है कि महाप्रभु के समकालीन भक्त-वैष्णवों ने गौरपरिकर मुरारि की इस कृति को अपनी आनन्द-मुग्धता द्वारा स्वीकृति प्रदान की थी। 'दंडे-दंडे तिले-तिले' गोरारूप देखे बिना मृतप्राय होने वाले, 'जय कृष्ण-चैतन्य राम' कहकर साश्रुनयन नृत्य कर उठने वाले श्रीपाद मुरारि गुप्त को आज हम भी बार-बार प्रणाम करते हैं।

★★★

!! श्रीगणेशाय नमः!!

# श्रीकृष्णचैतन्यचरितामृत

## प्रथम प्रक्रम

**प्रथम सर्ग :** विशुद्ध विक्रम से युक्त, स्वर्ण वर्ण, कमलनयन, आजानुलम्बित भुजाओं वाले, भक्तिरसमय नर्तक श्रीगौरसुन्दर की जय हो। वे विभु, जगन्नाथ मिश्र के तनय, जगत् के पालनकर्ता, विश्व के कारण और आर्ति-विनाशन, अपनी कलि-कलुषहारी भक्ति को वहन कर (उन्नत उज्ज्वल भक्तिरस के वितरण के लिये) शचीगर्भ से आविर्भूत हुए हैं। नौ द्वीपों से युक्त भूभाग पर ब्राह्मणों द्वारा अभिनन्दित उन विश्वम्भर नामधारी हरि ने घर में माता-पिता को सुख प्रदान किया और गुरुगृह में पवित्रभाव से गुरु-परिचर्या करते हुए षड़ंग वेद-संहिता आदि का अध्ययन किया। युगोचित धर्माचरण के लिये श्रीहरिनाम-संकीर्तन को परम पुरुषार्थ मानकर उसका उपदेश दिया और हरिपदांकित भूमि गया में पिता का श्राद्ध आदि किया। वहाँ कृष्ण-स्मरण से उनका श्रीअंग पुलक आदि से भर उठा, प्रेम से जड़ हो गया। दैववाणी सुनकर वे शीघ्र ही स्वमन्दिर नवद्वीप लौट आये। मुख्य-मुख्य भक्तजनों से परिवेष्टित प्रभु का श्रीअंग प्रेम (अश्रु-कम्प आदि भावों) से भरा रहता। वे 'दानवसिंहमर्दन' गौरहरि हरिकीर्तन और भगवत् कथारस में मग्न रहते।

महाप्रभु की कीर्तिगाथा साधु सज्जनों के लिये कर्णरसायन है; उनकी पिपासा शान्त करने के लिये मुरारि गुप्त ने प्रेमाश्रुओं से भरकर इस मंगलमय चरित्र की अवतारणा की।

द्विजकुलरूपी कमल को प्रफुल्लित करने वाले विचित्र सूर्यस्वरूप भक्त श्रीवास पंडित ने मुरारि से कहा—तुम गौरहरि का चरित्र वर्णन करो। यह आज्ञा पाकर मुरारि उन्हें हाथ जोड़कर बार-बार नमस्कार कर श्रीचैतन्य की कलिकलुष-विनाशन गाथा गाने को प्रवृत्त हुए। सोचने लगे—इस अर्थबहुल चैतन्यकथा का वर्णन मैं कैसे करूँ? इस लीला का वर्णन करने में स्वयं वृहस्पति भी सक्षम नहीं, पर मुझे वैष्णव की आज्ञा का पालन करना ही है। हरिस्मरणरूपी सम्पदा के साथ वैष्णव की आज्ञा का पालन करना ही है। हरिस्मरणरूपी सम्पदा के साथ वैष्णव आज्ञा सदा फलीभूत होगी। ऐसा सोचकर मुरारि ने भक्तवृन्द के आनन्द के लिये

धर्म-अर्थ-काम- मोक्षदायिनी भक्तिपूरिपूर्ण गाथा का शुभारम्भ किया।

जो अजन्मा पुराणपुरुष हैं, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हैं, जिनके वक्ष पर श्रीवत्स-कौस्तुभ सुशोभित हैं, जो उत्तम वस्त्र धारण किये हैं— मैं उन चैतन्यहरि को प्रणाम करता हूँ।

सत् पुरुषों के आनन्द के लिये कुछ भगवत् कथा कहता हूँ। यदि कहीं कोई त्रुटि विच्युति हो, तो परोपकारी महत् पुरुष संशोधन करेंगे, ऐसा विश्वास है।

नवद्वीप नामक एक परम वैष्णवक्षेत्र है, जहाँ ब्राह्मण, वैष्णव, साधु, कर्मनिष्ठ व्यक्ति रहते हैं। सभी शास्त्रार्थ में पारंगत। अनेक चिकित्सक, शूद्र, वणिक आदि का भी वास है। इस वैकुण्ठतुल्य धाम में सब अपने-अपने आचार में रत, विद्योपजीवी, सच्चरित्र और देवपूजक।

यहाँ श्रीहरिपादपद्मों के मत्त मधुकर श्रीवास पंडित वास करते। वे भुजदण्ड उठाये प्रेमार्द्र हुए आनन्दपूर्वक प्रभु का गुणगान करते। द्विज-अग्रगण्य गोपीनाथ भी यहाँ रहते। वे कृष्णनाम सुनते ही मत्त होकर जोर से रोते और कर-भंगिमा के साथ नृत्य करते। एक थे श्रीअद्वैत- उदीयमान सूर्य की कान्तिवाले, ज्ञानियों के कमल-कुल को प्रकाशित करने में परम निपुण। करुणा के सागर, जिन्होंने मानो चन्द्रमा की तरह लोगों के ताप शान्त करने के लिये ही देह-धारण किया था। प्रेमध्यान में सुदक्ष, नृत्य आदि कलाओं और गुणगण की दृष्टि से महात्मा। उन्हें 'परमरसकलाचार्य' ईश्वर ही समझो।

यहीं रहते द्विजराज चन्द्रशेखर गुरु। सभी गुणों से युक्त। देह कृष्णनाम से रोमांचित और अश्रुधाराओं से सिंचित। यहाँ मुनि हरिदास नृत्य करते, तो जगदीश्वर दासवत्सल होकर महेश्वर और आकाशचारी देवताओं के साथ आनन्दपूर्वक वह नृत्य देखते। यहाँ विष्णुपद से निकली सुरधुनी करुणार्द्र और वेगवती होकर मानो सरयू और यमुना से स्पर्धा करती प्रवाहित हैं—वे कनककान्ति हरि को धारण जो कर रही हैं! और इसी नवद्वीप धाम में द्विजकुल-समुद्र के लिये चन्द्र के समान जगन्नाथ भी वास करते। वे वेदाचार्य, सर्वगुणसम्पन्न और वृहस्पति के समान थे। श्रीकृष्ण के ध्यान में लीन, शुद्ध प्रेमार्द्र। नवीन चन्द्रकला की तरह उनका यश वर्धमान था।

**द्वितीय सर्ग :** जगन्नाथ को सर्वशास्त्र-विशारद जानकर उनके अध्यापक ने मिश्रपुरन्दर उपाधि प्रदान की। नीलाम्बर चक्रवर्ती नामक महामना ब्राह्मण ने उन कुलीन पंडित जगन्नाथ मिश्र को अपनी शची नामक कन्या का दान किया। शचीदेवी से विवाह कर जगन्नाथ इन्द्र के समान श्रीयुक्त हुए। अतिथि-सत्कार, शान्तिस्वस्त्ययन, नित्य काम्य कर्म अनुष्ठान आदि के फलस्वरूप मिश्रजी के घर धर्म भी बढ़ने लगा।

उनके घर क्रमशः आठ कन्यायें जन्मीं। दैववश वे सभी पंचत्व को प्राप्त हुईं। शचीदेवी ने दु:खी होकर श्रीहरि की शरण ली और मिश्रजी ने पुत्र कामना से यज्ञ किया। यथासमय उन्हें एक देवपुत्र-सा-पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। निर्धन व्यक्ति निधि प्राप्त कर आनन्दित होता है। वैसे ही जगन्नाथ को भी यह रत्न पाकर आनन्द हुआ। उसका नाम रखा विश्वरूप। ये महात्मा (विश्वरूप) कुछ ही दिन के अध्ययन से वेद और न्यायशास्त्र में पारंगत हो गये। भक्तियोग में भी उनकी अच्छी गति थी। वे सर्वज्ञ, बड़े ही शान्त, सुधी, सभी का उपकार करनेवाले थे। निरन्तर हरि के ध्यान में मग्न, विषयों से दूर और श्रीमद्भागवत के रसास्वादन में मत्त रहते।

जैसे कश्यप और अदिति के घर इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र ने जन्म लिया था, वैसे ही जगन्नाथ और शची के यहाँ विश्वरूप के अनुज के रूप में जगत् योनि अजन्मा प्रभु स्वयं प्रादुर्भूत हुए।

उन्होंने त्रिभुवन को हरिसंकीर्तनमय कर, पुरुषोत्तम क्षेत्र (नीलाचल) में वास कर, स्वयं हरि होकर लोकशिक्षा हेतु हरिभक्ति याजन कर, वृन्दावन-माधुरी का स्वयं आस्वादन कर जीवों को आस्वादन कराया है।

यह अद्‌भुत गाथा सुनकर ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय एवं 'श्रीचैतन्यकथामत्त' दामोदर पंडित बोले—"हे मुरारि! जिस दिव्य अद्‌भुत भुवनपावन कथा को सुनकर लोग घोर कलुषभरे संसार से मुक्ति पा सकते हैं, वही सुनाओ न! जिससे लोगों को कृष्णपादपद्मों में परम प्रेमसम्पदा प्राप्त होगी, वह हरिकथा सुनाओ। बताओ, वे सर्वेश्वर प्रभु पृथ्वी पर किसलिये आविर्भूत हुए? और जगत्स्वामी ने यहाँ क्या-क्या काम किये? आप उन कल्याणकारी लीलाओं का वर्णन करें, जिनसे जगत् के तापों की शान्ति और महात्माओं को प्रेम की प्राप्ति होगी।"

दामोदर पंडित के वचन सुनकर मुरारि गुप्त ने प्रसन्न होकर कहा—'हे

ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं संक्षेप में बताता हूँ, क्योंकि विस्तार से तो वृहस्पति भी इस लीला का वर्णन नहीं कर सकते.....

एक दिन नारदजी सभी के उपकार के लिये सानन्द भगवन्नाम गाते वीणा बजाते भारतवर्ष के गगनमण्डल में विचरण कर रहे थे। वे वैष्णवाग्रगण्य, परम तेजस्वी और पूर्णचन्द्र की तरह कान्तियुक्त हैं; कैलाश पर्वत के शिखर के समान उनका आकार। शुभ्र मेखला और मृगचर्म धारण किये। विष्णु के अंश और सभी के प्रिय हैं। 'जहाँ किसी वैष्णव के दर्शन होंगे, वहीं रहूँगा'—ऐसा सोचकर वे पृथ्वी को देखने लगे। हाय! यह पृथ्वी तो 'पापमित्र' कलि के अधिकार में है—म्लेच्छ के हाथ में लगी गाय की तरह। मल (पाप-कलुष) से दूषित। सूर्य की प्रचंड किरणों से सूखे जलाशय-सी! लोग पाप-व्याधि से ग्रस्त, परनिन्दा में रत, शठ, अल्पायु, दुर्बल हैं। शासकवर्ग पापकार्य में निपुण। शूद्र-यवन-म्लेच्छ सब खलप्रकृति, अपकर्मों में निरत, प्रजा का सर्वस्व हरने वाले। यहाँ तक कि शास्त्रज्ञ भी साधु-निन्दक और आत्म-प्रशंसक हो गये हैं! यह सब देखकर नारदजी सोच में पड़ गये।

**तृतीय सर्ग :** कलियुग की प्रथम सन्ध्या में वसुन्धरा पाप-पंक में डूब गई। पापदग्ध जीवों के लिये हरिनाम-रसायन ही तारक तत्त्व है, पर जो वैष्णवनिन्दक और आत्मश्लाघी हैं, नाम और श्रीविग्रह की निन्दा करते हैं या उन्हें अनित्य मानते हैं, उन मन्दबुद्धियों को नरक निश्चित है। क्या किया जाय, यह सोचते-सोचते नारद वैकुण्ठ गये। अपने तेज से रजःसमूह (प्रकृति के गुणों) को नष्ट करने वाले, वेदत्रय द्वारा स्तुत्य, श्री-सौन्दर्य और सौरभ से युक्त वैकुण्ठधाम में मुनिवर नारद ने लक्ष्मी-सेवित, अजन्मा पुराणपुरुषोत्तम, किरीट-कुण्डलधारी, स्वर्णवर्ण परिधान, चतुर्भुज श्रीकृष्ण के दर्शन किये।

श्रीकृष्ण के पादपद्मों की सुगन्ध का आघ्राण पाकर वे अश्रु-पुलक से भरकर मूर्च्छित होकर दण्डवत् गिर पड़े। कृतज्ञ प्रभु ने तत्क्षणात् रत्नअँगूठियों की प्रभा से युक्त हाथ फैलाकर मुनि का सिर स्पर्श किया, फिर मृदुमधुर हास्य के साथ कहा—'हे मुने! उठो। इस समय तुम जो कहोगे, मैं करूँगा। अब समय आ गया है कि मैं धार्मिकों का धर्म स्वयं आचरण करूँ।' यह कहकर महाजनों के एकान्त शरण श्रीहरि ने नारदजी

को उठाया और आसन पर बैठने को कहा। प्रभु बोले–'हे मुने! अपने आने का कारण बताइये। आपकी क्या इच्छा है? मैं तुम्हारे लिये सब करने को प्रस्तुत हूँ (अवतार-कार्य करना चाहता हूँ), क्योंकि महाजनों की सभी चेष्टायें परोपकार के लिये होती हैं।'

श्रीकृष्ण की मेघगम्भीर वाणी सुनकर और उनका पूर्णहास्ययुक्त श्रीमुख देखकर नारद जी बोले–'हे प्रभो! आपको प्रणाम करता हूँ। दुःखी जनों का परित्राण करो। पाप-परायण लोगों के भार से पृथ्वी क्षीण हो रही है। लोग भगवत् प्रसंग से विमुख और कलिकाल से पीड़ित हैं। तुम्हारे बिना उनका और कोई नहीं; तुम स्वयं ही सद्गति हो, उनका निस्तार करो।'

नारदजी की बातें सुनकर श्रीहरि ने सब जानते हुए भी पूछा–"इस विषय में क्या करना है? क्या करने से शान्ति मिलेगी?"

"तुम शत-शत चन्द्रमाओं की तरह सुशीतल होकर ब्राह्मणवंश में सत्कुल में वात्स्य गोत्र में अवतीर्ण होओ, जगन्नाथ-सुत नाम से प्रसिद्धि पाओ और धरा का भी मंगल करो।

"तुमने राम आदि अवतारों में पापात्मा राक्षस-दानवादि का वध किया, किन्तु हे भगवन्! इस बार ऐसा न कर मानव का चित्त-शोधन करो। आसुरी भावयुक्त लोगों का वध करोगे, तो वे रहेंगे कहाँ? इसलिये इस बार आप अपनी कीर्ति का विस्तार कीजिये, इसी से सब सुखी होंगे। आपकी सहायता के लिये रुद्र के साथ मुनिवृन्द ने भी पृथ्वी पर अवतार लिया है।" देवर्षि की बातें सुनकर हरि ने 'तथास्तु' कहा और नारद जी ने भी सानन्द प्रणाम कर विदा ली।

**चतुर्थ सर्ग :** यह सब सुनकर दामोदर पंडित परम प्रसन्न होकर बोले–"आप नरहरि (श्रीगौर) का चरित्र सुनाइये। यह भी बताइये कि पृथ्वी पर अवतारों में से कौन-कौन अवतीर्ण हुए, और अवतार कितनी प्रकार के हैं?"

मुरारि ने प्रसन्न होकर कहा–मैं हरि के अंशावतारों की बात बताता हूँ। ये शुद्धभक्त माने जाते हैं; भक्त होते हुए भी ईश्वरस्वरूप। सबसे पहले द्विजश्रेष्ठ माधवेन्द्रपुरी हुए; ये ईश्वर-अंश हैं। दूसरे अद्वैत आचार्य। इन दोनों के शिष्य हैं–चन्द्रांशु चन्द्रशेखर, जो आचार्यरत्न के रूप में

प्रसिद्ध हैं, पृथ्वी पर बड़ी कीर्ति है। नारद जी के अंश-रूप में आये हैं श्रीवास पंडित। गन्धर्व-अंश से आविर्भूत हुए हैं वैद्य और सुगायक मुकुन्द। मुनि-अंश से हैं हरिदास। प्राचीनकाल में वैष्णवक्षेत्र द्रविड़ में महातपस्वी राम हुए थे। उनके पुत्र ने तुलसीपत्र धोकर पात्र में रखे, पर वे भूमि पर गिर गये। उसने वे तुलसीपत्र पुनः धोये बिना ही पिता को दे दिये। इसी अपराध के कारण अब वे ही हरिदास के रूप में यवनकुल में जन्मे हैं।

ये हरिदास धार्मिक सुधी शान्त और सर्वज्ञ हैं। ब्रह्मांश होकर भी भक्त रूप में ही समधिक प्रसिद्ध। बलदेव-अंश महातेजस्वी महायोगी अवधूत नित्यानन्द हुए। उनके कुल शील लीलादि का वर्णन स्वयं वृहस्पति सौ वर्षों में भी नहीं कर सकते। ये श्रीकृष्ण के द्वितीय विग्रह हैं, गौरांग के प्राणवल्लभ हैं (अथवा गौरसुन्दर ही इनके प्राणवल्लभ हैं)। शत-शत देव और मुनि पुंगव अंशरूप से अवतीर्ण हुए हैं, मैं उनकी गणना करने में भी असमर्थ हूँ।

पुरुषावतार दो प्रकार के होते हैं—युगावतार और कार्यावतार (लीलावतार)। युगावतार युगधर्म की स्थापना करते हैं: सत्ययुग में चतुर्भुज जटाधारी शुक्ल हुए-मुनिरूप में सदा ध्यानरत; त्रेता में स्रुवा (लकड़ी का चम्मच) आदि हाथों में लिये यज्ञ हुए; द्वापर में पूजा को ही पुरुषार्थदायक मानकर साक्षात् विष्णु ही पृथुरूप में आये; कलियुग में कीर्तन को सर्वशक्तिसम्पन्न और परमानन्ददायक जानकर साधुजनों को सुख देने के लिये स्वयं श्रीचैतन्यमहाप्रभु पृथ्वी पर आये हैं। उन्होंने स्वयं कीर्तन कर और कराकर आनन्द पाया है।

**"कलौ तु कीर्तनं श्रेयो धर्मः सर्वोपकारकः ।**
**सर्वशक्तिमयः साक्षात् परमानन्ददायक : ।।**
**इति निश्चित्य मनसा साधूनां सुखमावहन् ।**
**जातः स्वयं पृथिव्यान्तु श्रीचैतन्यो महाप्रभुः ।।**
**कीर्तनं कारयामास स्वयं चक्रे मुदान्वितः ।"**

ये युगावतार थे। कार्यावतार हैं—मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और कल्कि। बहुरूपी प्रभु के विविध कार्यों का वर्णन किया गया है।

**पंचम सर्ग :** हे ब्रह्मन्! अब जगदीश करुणावारिधि प्रभु श्रीचैतन्य की नवीन अवतार-कथा सावधानी से सुनिये। नारदजी को विदा कर भगवान् अच्युत ने जगन्नाथ विप्र के चित्त में प्रवेश किया। साध्वी शचीदेवी ने उस महातेज हरि के अंश को अपने गर्भ में धारण किया। उन्हें तप्त स्वर्णकान्तियुक्त देखकर जगन्नाथ मिश्र आनन्दित हुए और ब्रह्मा आदि देवता, गन्धर्व, इन्द्र आदि आकाशचारी देव हर्ष से भरकर साश्रुनयन सिर झुकाये हाथ जोड़े उनकी स्तव-स्तुति करने लगे—'तुम सदा विष्णु को गर्भ में धारण करती हो; तुम हरि-जननी अदिति हो; तुम्हारे गर्भ में सूर्य चन्द्र अग्नि आदि की प्रभा विद्यमान है; तुम देवकी रोहिणी यशोदा हो..। जो (कीर्तन) यज्ञ का विस्तार करेंगे, उन्हीं पुरुषोत्तम को आपने गर्भ में धारण किया है। इन गौरहरि का कीर्तन आधा पल सुनकर जो प्रेम प्राप्त होता है, वह कोटि यज्ञों से भी नहीं मिलता।

**"कीर्तनं नृहरेः श्रुत्वा निमिषार्द्धेन या भवेत्।**
**प्रीतिरस्मादृशां सा तु कोटियज्ञैर्भवेन्न हि।"**

समुद्रमन्थन कर स्वयं हरि ने मुझे अमृत दिया था, पर अमृत से भी कोटि गुना अधिक आनन्द है श्रीहरि के कीर्तन में। लगता है, कीर्तन की तुलना में मोक्ष भी असत्य है।' इस प्रकार इन्द्र के साथ देवताओं ने शची को प्रणाम कर और ब्रह्माजी को आगे कर श्रीहरि का यशोगान करते हुए स्वधाम प्रस्थान किया। 'लक्ष्मीपति के अंश पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए'—यह कहकर वे सब कलि के भाग्य की प्रशंसा कर प्रेमविभोर होकर नाचने लगे। उधर फाल्गुनी पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्र उदित हुआ, शुभ सद्गुणों से युक्त योग आया, सुगन्धवाही पवन प्रवाहित होने लगा, सुरधुनी का जल भी शुद्ध-शीतल हुआ, देवताओं और साधुओं के चित्त आनन्द से भर गये और स्वयं हरि आविर्भूत हुए।

प्रफुल्लित कमल-नयन, पूर्णचन्द्रवदन, कनककान्ति, और अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाले नवजात पुत्र को देखकर जगन्नाथ मिश्र के आनन्द की सीमा न रही, वे प्रेम से गद्गद् हो गये। हरि के जन्म के समय राहु ने चन्द्रमा को ग्रास कर लिया। लगता है, चन्द्रमा श्रीकृष्णपद्मवदन से पराजित होकर लज्जित होकर स्वयं सुररिपु राहु के मुख-विवर में चला गया। **"कृष्णपद्मवदनेन निर्जितः प्राविशत्**

**सुररिपोर्मुखं विधुः।**'' लोग नरहरि का कीर्तन और स्नान-दान आदि करने लगे।

ब्रह्मा शिव महेन्द्र के साथ देवगण आनन्दित हुए। नृत्यपरायण अप्सरायें और गन्धर्व पुष्प वर्षण करने लगे।

सर्वशास्त्रविद् नीलाम्बर चक्रवर्ती बड़े हर्ष के साथ अपने दामाद (जगन्नाथ मिश्र) के घर गये। अपने दौहित्र के जन्म-काल को जानने वाले चक्रवर्तीजी ने शची-जगन्नाथ से कहा—'अहो! वृहस्पति उच्च का है, यह बालक पुरुषसिंह और सभी लोकों का रक्षक होगा। सुशील, सभी धर्मों का आश्रय, संन्यासी-चूड़ामणि और पूर्णचन्द्रवत् सभी जीवों का प्रीतिदायक होगा। पितृ-मातृ दोनों कुलों का उद्धार करेगा।''

पिता की बातें सुनकर शचीदेवी परम हर्षित हुईं और मिश्रजी ने पुत्र के जातकर्म आदि पूरे किये।

**षष्ठ सर्ग :** कलभाषी शिशु जब घुटनों के बल चला, तो मिश्र-दम्पति हर्ष से भर उठा। गौर के रक्तपद्माभ वदन के मन्द स्मित से साधुओं के मन का अन्धकार दूर हुआ। प्राचीन काल में इसने विश्व का भरण (लालनपालन) किया है, यह सोचकर पिता ने स्वयं बच्चे का सुन्दर नाम रखा श्रीमद् विश्वम्भर। तप्तकांचन वर्ण, कमलनयन, चन्द्रवदन, माल्य-हारधारी, कुंचित केश, हिंगुल (सिन्दूर)-से करपदतल, अमृत-से मधुर अस्पष्ट बोल, कंकण-अंगद (कंगन-बाजूबन्द)-विभूषित! ऐसे दिग्वसन हरि चन्द्रकला की तरह बढ़ने लगे। क्रमशः रक्ताभ चरणों से चलकर यह अमित द्युति शिशु पृथ्वी का विरह-जनित ताप हरने लगा।

तैर्थिक विप्र का अन्न खाकर इन जनार्दन ने नन्दभवन के कौतूहल की स्मृति जगा दी। खेल-खेल में अपनी उम्र के बच्चों पर सूखे पत्तों आदि से आघात किया, तो वे बच्चे तरह-तरह के भावों से भर उठे। ये माया-अर्भक (माया से बच्चा बने) हरि एक पैर से पृथ्वी पर खड़े होकर अपने घुटने से दूसरे बच्चे का घुटना स्पर्श कर मर्कटलीला का अनुकरण करते।

एक दिन यह देखकर कि माँ क्रोध करती उन्हें पकड़ने आ रही हैं, उन्होंने गुस्से में आकर घर के बर्तन फोड़ दिये। द्वापर में कृष्ण द्वारा बर्तन फोड़ दिये जाने पर यशोदा ने उन्हें पशुओं को बाँधनेवाली रस्सी से बाँधा

था, आज शचीमाँ गौर का मुख देखकर भय से काँपने लगीं। फेंके गये मिट्टी के बर्तनों को एक के ऊपर एक जमाकर उस अपवित्र स्थान पर बैठकर यह बालक माँ के आगे हँसने लगा। यह देखकर शचीमाँ बोलीं—'हे वत्स! इस अपूत स्थान को छोड़ो, पुनः स्नान कर मेरी गोद में आओ।'' यह सुनकर सर्वतत्त्वविद् भगवान् ने दत्तात्रेय-भाव से भरकर माँ से कहा—''माँ, शुचि-अशुचि कल्पना मात्र है। यह जगत् तो क्षिति जल पावक गगन समीर पंचभूतों से बना है। सर्वत्र करुणामय श्रीहरि ही विराज रहे हैं। इसलिये मैं पवित्र ही हूँ, अपवित्र कभी नहीं। माँ, तुम शंका न करना।'' माँ हाथ पकड़कर लाईं और सुरधुनी में स्नान कराया।

कुछ दिन पश्चात् पुनः उसी स्थान पर बैठे देख शचीमाँ ने ताड़ना की—''अरे मन्दबुद्धि! तुम उस अपवित्र और निषिद्ध स्थान पर क्यों बैठे हो!'' यह सुनकर श्रीमद्विश्वम्भर ने क्रोध से भरकर कहा—'मूढ़े! यहाँ कहीं अपवित्रता नहीं है। मैंने पहले भी कहा है, फिर तुम मुझे क्यों फटकार रही हो?'

**''श्रीमद्विश्वम्भरः प्राह मूढ़े नास्त्यशुचि क्वचित् ।**
**उक्तं मयैतत् पूर्वं ते तत् किं मां त्वं विगर्हसि ।।''**

यह कहकर उन्होंने रोष से भरकर एक ईंट मा पर फेंककर मारी, जिससे वे मूर्छित हो गिर पड़ीं। महिलाओं ने शीतल जल के छींटे मारे। यह देखकर नरलीला करने वाले हरि वहाँ आकर 'माँ माँ' कहकर उच्चस्वर से रोने लगे। इतना ही नहीं, अपना सर्वदुःखहारी श्रीहस्त माँ के मुँह पर रखा।

शचीमाँ ने शीघ्र ही प्रकृतिस्थ होकर पुत्रस्नेह से आनन्दविभोर होकर गौर को गोद में ले लिया। किसी एक महिला ने जगद्गुरु (विश्वम्भर) से परिहास करते हुए कहा—''दो डाब लाकर अपनी माँ को दो, तो ये स्वस्थ हो जायेंगी, नहीं मर जायेंगी।''

यह सुनकर गौर तुरन्त ही माँ की गोद से उतरकर बाहर गये और दो डाब लाकर माँ को दे दिये। महिलाओं ने देखा कि वे पेड़ से ताजा तोड़े गये थे; दोनों के वृन्तों (डंठलों) पर दूध लगा हुआ था। ''तत्काल पातनादम्बुयुक्तवृन्तयुगं''! महिलाओं ने विस्मित होकर पूछा—''कहाँ से लाये, बोलो?'' सुनकर महामना विश्वम्भर ने हुंकार कर उन्हें (यह सब

बताने के लिये) मना किया।

अब इन परमात्मा हरि के अन्य लोकातीत चरित्र सुनिये। एक दिन रात में पुत्र को वक्ष से लगाकर शचीमाँ सो रही थीं। देखा कि उनका कक्ष लोगों से भरा है। उन्होंने शंकित और उद्विग्न होकर क्रोड़स्थ बालक को तुरन्त जगन्नाथजी के कक्ष में भेज दिया। बीच में ही देवताओं ने विश्वम्भर की पूजा की। बालक जब चल रहा था, तो उसके रिक्त (सूने) चरणों से रह-रहकर नूपुर ध्वनि हुई, जिसे सुनकर शची-जगन्नाथ विस्मय के साथ कहने लगे—बात क्या है? यह ध्वनि कहाँ से आई?

बहरहाल, जगन्नाथजी ने पास आये विश्वम्भर को आलिंगन कर बड़ा आनन्द प्राप्त किया।

**सप्तम सर्ग :** दामोदर पंडित के पूछने पर वैद्य मुरारि ने विश्वम्भर के बड़े भाई विश्वरूप का पावन चरित्र बताया। बोले—षोड़शवर्षीय विश्वरूप सदा श्रीहरिचरणों में आसक्तचित्त, शान्त, सन्तुष्ट, प्राकृत विषयों से विमुख, सर्वज्ञ, रसज्ञ और वेदवेत्ता थे। पिता उनके विवाह के लिये उपयुक्त कन्या की बात सोचने लगे, तो उन्होंने पिता के मन की बात जानकर गृहत्याग कर भागीरथी पाकर संन्यास ले लिया। पिता बड़े दु:खी हुए, माँ विलाप करने लगीं। दोनों ही पुत्र की मंगल-कामना करते हुए कहने लगे—"हमारा पुत्र संन्यासधर्म में ही निरत हो।" विश्वरूप के लिये यह आशीर्वाद व्यक्त कर दोनों ने धैर्य धारण किया और विषाद त्याग कर जगत्पति पुत्र विश्वम्भर को गोद में लेकर परमानन्द प्राप्त किया। तब गौरहरि बोले—"पिताजी! भैया आपको छोड़कर दूर चले गये, मैं आपकी और माँ की सेवा करूँगा। आप सुख से रहिये।" पुत्र की यह परम गम्भीर सार्थक बात सुनकर जगन्नाथजी और शचीमाँ दोनों ने आनन्दाश्रु बहाते हुए उन्हें आलिंगन कर लिया। वे दोनों पुत्र के संस्पर्श से परम तृप्त होकर अन्य बातें भूल गये, ठीक उसी तरह जैसे योगी परमात्मा से जुड़कर इहलोक-परलोक सब भूल जाते हैं।

विश्वम्भर पिता की सेवा में मन लगाते, पढ़ते और बच्चों के साथ खेलते। कभी-कभी समवयस्क बच्चों के साथ खेलते-खेलते धूल-धूसरित हो जाते और भूखे होने पर भी खाने की बात भूले रहते। एक दिन पिता ने यह देखकर कि विश्वम्भर कुछ स्वतंत्र हो रहा है (बात नहीं

सुनता), उनके भले के लिये भर्त्सना कर कहा—"तुम पढ़ना-लिखना छोड़कर हर समय बच्चों से घिरे रहते हो! भूखे होने पर भी खेल में मत्त रहते हो?" तत्पश्चात् रात को मिश्रजी ने एक स्वप्न देखा—एक द्विजवर कह रहे हैं: तुम पुत्र को पूरा सम्मान नहीं दे रहे?! पशु क्या स्पर्शमणि (पारस) का मूल्य जानता है? मिश्रजी ने उत्तर दिया—मेरा पुत्र नारायण हो, तब भी उसकी ताड़ना करना मेरा धर्म है। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने मिश्रजी को साधुवाद दिया। मिश्रजी से स्वप्न की बात सुनकर लोग इस बालक को पुरुषोत्तम मानने लगे। मिश्रजी और शचीमाँ ने भी स्वयं को पूर्णमनोरथ और परितुष्ट अनुभव किया।

एक दिन उदीयमान सूर्य की किरणों के समान अपनी अंगकान्ति से परिवेश को आलोकित करते विश्वम्भर ने माँ से कहा—"माँ, एक काम करो।" शचीमाँ बालक की देह के उस तेज को देखकर विस्मित और भयभीत होकर बोलीं—"बेटे, तुम जो कहोगे करूँगी, बोलो।"

"माँ! तुम हरिवासर (एकादशी) को अन्न ग्रहण मत करना।" माँ ने इस बात को सहर्ष मान लिया।

एक ब्राह्मण के दिये फल, सुपारी आदि खाकर विश्वम्भर माँ से बोले—"माँ, मैं जा रहा हूँ, अपने पुत्र की इस निश्चेष्ट देह का क्षणार्द्ध पालन करो।" कहकर वे खड़े हुए और तुरन्त ही दण्डवत् गिर पड़े। माँ ने दु:खी होकर उन्हें गंगाजल से स्नान कराया, तो वे पूर्ववत् स्वस्थ-सहज हो गये। यह सब जानकर मिश्रजी शचीदेवी से कहने लगे—यह कैसी दैवमाया है, नहीं जानता। "**दैवीं मायां न विद्महे**"।

इधर यह दिव्य कथा सुनकर दामोदर पंडित बोले—"मुरारि! तुमने यह क्या कहा? जगद्गुरु स्वयं कृष्ण आविर्भूत हुए हैं। उन्होंने ऐसा क्यों कहा—मैं जा रहा हूँ, अपने पुत्र का पालन करो। इस बात को लेकर मुझे बड़ा संशय है। जगदीश्वर की माया कैसी? मुझे बतानी होगी। श्रीहरि के सभी चरित्र जगत् के हित के लिये होते हैं।"

**अष्टम सर्ग :** मुरारि ने श्रीहरि को प्रणाम कर विचार कर कहा—"भगवान् के ध्यान, कीर्तन, श्रवण के फलस्वरूप श्रीहरि परम भाग्यवान जनों के हृदय में प्रवेश करते हैं। प्रभु ने इसी लीला का अनुकरण किया। उनका तेज ही उनका पराक्रम है। आत्मदेह आदि को भूलकर आदमी

उस तेज को धारण करता है। फिर जब उसे बाह्य आवेश (ज्ञान) होता है, तो सहज भाव से अपने कार्य करता है। प्राचीन काल में समुद्र में प्रभु और प्रह्लाद का तादात्म्य स्थापित हुआ; तट पर आकर प्रह्लाद को पुनः देहस्मृति (बाह्य आवेश) हुई। इसी प्रकार भगवान् के साथ गोपियों के तादात्म्य की बात भी सुनी जाती है। ईश्वर ने यह शिक्षा देने के लिये ही यह लीला की—उस फल-सुपारी खिलानेवाले ब्राह्मण की देह में प्रवेश किया। कृष्णभक्त को तत्स्वरूपता (ईश्वर-सारूप्य) प्राप्त होती है। भक्तदेह ही भगवान् की आत्मा है, इसमें संशय नहीं। "**भक्तदेहो भगवतो ह्यात्मा चैव न संशयः**"। हे ब्रह्मन! अब पुनः श्रीचैतन्यलीला सुनिये, इसे श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने से मनुष्य भव-बन्धन से मुक्त हो सकता है।

गुरु-गृह में वास कर इन विष्णु ने समस्त वेदों का अध्ययन किया और ये सरस्वती-पति शिष्यों (अपने छात्रों) को पढ़ाने लगे। दैवयोग से जगन्नाथ मिश्र को प्राणान्तक ज्वर हुआ। स्वयं हरि श्रीमान् विश्वम्भर कीर्तनरत भक्तवृन्द के साथ उन्हें गंगातट पर ले गये। पिता के चरणों का आलिंगन कर गद्‌गद् स्वर में बोले—"हे पितः! हे प्रभो! आप मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?"

यह सुनकर मिश्रजी ने कहा—"वत्स! मैंने तुम्हें श्रीरघुनाथ के चरणकमलों में पूरी तरह सौंप दिया है।" तत्पश्चात् गगन में महेन्द्र सहित देवताओं के उपस्थित होने पर और भक्तवृन्द द्वारा हरिसंकीर्तन करने पर वे देह त्यागकर देवताओं के रथ पर आरूढ़ होकर श्रीहरि के धाम चले गये। पति की सिद्धि-प्राप्ति पर महिलाओं से घिरी दुःखी महादीन शचीदेवी उनके चरणों में गिरकर कुररी (क्रौंच) की तरह विलाप करने लगीं। कृपानिधान गौरहरि भी पितृशोक में विलाप करने लगे। उनके जो आँसू प्रवाहित हुए, उन्हें देखकर लगा मानो वक्षस्थल पर गजमुक्ताहार सुशोभित है।

**"पितरं विलपतो मुहुर्दृशो-रपतद्वारिभ्भरो दयानिधेः ।**
**गजमौक्तिकहार विभ्रमं विदधद्वक्षसि लक्षणं बभौ ।।"**

तत्पश्चात् बन्धुजनों द्वारा शान्त किये जाने पर प्रभु ने वेदना से भरकर ब्राह्मणों के निर्देशानुसार विधिमत से सभी कार्य पूरे किये।

**नवम सर्ग :** प्रभु ने श्रीविष्णुपंडित, सुदर्शन पंडित एवं श्रीगंगादास

पंडित के निकट पुनः अध्ययन आरम्भ किया। यह 'मायामनुज विग्रह' गौर लोकशिक्षा के लिये अध्ययन करते और सहपाठी ब्राह्मणों के साथ पूर्वी बंगाल की भाषा में बात कर परिहास करते।

एक दिन वे वनमाली आचार्य से भेंट करने गये, तो मार्ग में सखियों से परिवेष्टित रुचिरानना वल्लभाचार्य-कन्या को देखा, जो गंगास्नान को जा रही थी। देखकर प्रभु ने मन ही मन उनके (कन्या के) जन्म का कारण जान लिया। फिर एक दिन उक्त वनमाली आचार्य प्रभु के निवास पर आये और शचीमाँ को प्रणाम कर बोले—"विश्वम्भर के योग्य वल्लभ आचार्य की देवसुता के समान कन्या है। इच्छा हो तो उसका वरण करें।" सुनकर वे बोलीं—"मेरा पुत्र अभी बच्चा है, पितृहीन है, कुछ दिन पढ़ ले....।"

शचीमाँ का उत्तर सुनकर वनमाली विषण्ण मन से लौट रहे थे कि मार्ग में प्रसन्नानन 'कृष्ण' को देखा। भगवान् ने उन्हें तुरन्त आलिंगन कर मधुर स्वर में पूछा—"कहाँ गये थे?" उन्होंने कहा—"तुम्हारी माँ के श्रीचरण-दर्शन कर आ रहा हूँ। तुम्हारे विवाह की बात करने गया था। उन्होंने मेरी बात को महत्व नहीं दिया; दुःखी होकर लौट रहा हूँ।" प्रभु उनकी बात का कोई उत्तर न दे मृदु हास्य करते चल पड़े। घर पहुँचकर माँ से बोले—"माँ, ऐसा क्या कह दिया कि आचार्य दुःखी होकर चले गये? उन्हें मीठी बात कहकर सन्तुष्ट क्यों नहीं किया?"

माँ ने पुत्र का मनोभाव जानकर आदमी भेजकर वनमाली आचार्य को तुरन्त वापस बुलवाया और कहा—"तुम जो प्रस्ताव लाये थे, उस पर आगे कार्य करो।"

यह सुनकर आचार्य ने प्रसन्न होकर शचीमाँ को प्रणाम कर कहा—"हे ईश्वरि! मैं आपका आदेश सदा सिर पर रखूँगा।"

ऐसा कहकर वे वल्लभ मिश्र के यहाँ पहुँचकर बोले—"मिश्रपुरन्दर (जगन्नाथ मिश्र) के गुणवान पुत्र श्रीविश्वम्भर पंडित आपकी कन्या के योग्य हैं, इसलिये आप अपनी कन्या उनके हाथों सौंप दें।" सुनकर वल्लभ मिश्र ने कहा—"ऐसा सम्बन्ध भाग्य से ही सम्भव है। मैं निर्धन हूँ, कन्या को छोड़ और कुछ नहीं दे सकता। यदि भगवान् मेरे और मेरी पुत्री के प्रति प्रसन्न हों, तभी पंडितोत्तम विश्वम्भर मेरे दामाद हो सकते

हैं। रत्न के साथ मुक्ता का संयोग गुण (धागे) के माध्यम से ही होता है, सो आपके गुणों (कृपा उद्योग) से ही इन दोनों का संयोग संभव होगा।''

यह सुनकर परम प्रसन्न होकर वनमाली आचार्य बोले–''आपके विनय और वात्सल्य से सभी कार्य सुचारुरूप से सम्पन्न होंगे।''

माँ की आज्ञा से गौरहरि ने विवाह का सभी आयोजन किया। यथा समय मृदंग पणव आदि मुखरित हुए, ब्राह्मणों ने वेदध्वनि की, दिशायें दीप-माला-पताकाओं धूपगन्ध आदि से सुशोभित हुईं और विप्रगण ने श्रीहरि के विवाह का अधिवास किया।

**दशम सर्ग :** वल्लभ मिश्र ने भी ब्राह्मणों द्विजपत्नियों एवं अन्यान्य लोगों के साथ पहुँचकर वर को माल्य आदि से विभूषित कर अधिवास किया। अगले दिन सुबह गौरहरि ने स्नान कर पितृलोक एवं देवताओं की अर्चना कर ब्राह्मणों के सहयोग से नान्दीमुख श्राद्ध भी सम्पन्न किया। तत्पश्चात् ब्राह्मणों की यजुर्वेद-ध्वनि, मृदंग-भेरी-पटह (नगाड़ा) आदि की ध्वनि और महिलाओं की उलुध्वनि के साथ विभिन्न अनुष्ठान सम्पन्न हुए। शचीदेवी ने आनन्दपूर्वक सभी का स्वागत-सत्कार किया और कहा–''मैं भर्तृविहीन होकर क्या कर सकती हूँ? आप लोग स्वयं सभी कार्य सम्पन्न कीजिये।'' गौर माँ के ऐसे करुण शब्द सुनकर पितृविरह में सन्तप्त होकर वक्षस्थल-स्थित हार के स्थूल मुक्ताफल-जैसे अश्रुबिन्दु प्रवाहित करने लगे। यह देखकर शची ने विस्मित होकर कहा–'वत्स, ऐसे मांगलिक अवसर पर तुम अश्रुवर्षण कर रहे हो?''

विश्वम्भर पिता की स्मृति में मलिनमुख होकर मेघगम्भीर स्वर में बोले–''माँ, मेरे पास क्या धनबल या जनबल नहीं है, जो तुमने दु:खी होकर ऐसा कहा? मेरे पिता नहीं हैं, तो क्या तुम्हें दूसरे का आश्रय लेना पड़ेगा? तुमने तो देखा है, तीन-तीन बार विप्रों को सुपारी आदि से भरे पात्र और लेपनयोग्य सर्वोत्कृष्ट गन्धद्रव्य दिये गये। अन्यान्य कार्य भी सुचारुरूप से सम्पन्न हुए हैं। और तुम अच्छी तरह जानती हो कि मुझ में अलौकिक कार्य करने की प्रचुर शक्ति है, पर मैं लौकिक आचरण कर रहा हूँ। (**''अमर्त्यकार्येषु ममास्ति शक्तिस्तथापि लोकाचरितं करोमि''**)। पितृविहीन होते हुए भी मुझ में महाशक्ति है। तुम्हारी बात से मुझे बड़ा दु:ख पहुँचा है।''

विश्वम्भर की बातें सुनकर माँ ने मधुर वाक्यों से उन्हें शान्त किया।

'जगदेकबन्धु श्रीगौरचन्द्र' को सुन्दर वस्त्राभूषणों, माल्य चन्दन आदि से सुसज्जित किया गया। उधर वल्लभ मिश्र ने भी अपनी हेमगौरी कन्या को विविध प्रकार से अलंकृत किया और वर को लाने के लिये ब्राह्मणों को श्रीजगन्नाथ मिश्र के आवास पर भिजवाया।

गौरहरि वर रूप में दोले में बैठकर ब्राह्मण परिजनों के साथ वल्लभ आचार्य के भवन पहुँचे, तो उन्होंने स्वयं आगे बढ़कर उनका वरण किया। गौरहरि की उज्ज्वल तप्तकांचन देह सुमेरु पर्वत की तरह प्रतीत हुई। पूर्ण चन्द्र की प्रभा बिखेरती वर की मुखकान्ति से मदन भी पराजित हो गया। अंगद-कंकण-अंगुरीयक आदि से युक्त करों के साथ वांछाकल्पतरु गौरहरि ने कल्पतरु को भी लज्जित किया। तब वल्लभ आचार्य ने चन्द्रवत् उज्ज्वल, अपनी कान्ति से जगत् का अंधकार नाश करने वाली, सुअलंकृत कन्या को लागकर जगद्गुरु गौरहरि के चरणों में अर्पित किया।

वर-कन्या के मुखों की शोभा देखकर लगा जैसे चन्द्रमा और रोहिणी में प्रतियोगिता चल रही है। वे हर-गौरी की तरह एक-दूसरे पर पुष्प वर्षा करने लगे।

**''तयोर्मुखेन्दुः समरोज्ज्वलश्रिया सरोहिणीचन्द्रसमः सुशोभाम् ।**
**पुपोषतुः पुष्पचयैरसिंचतां परस्परं तौ हरपार्वतीव ।।''**

लक्ष्मीपति (गौरहरि) और लक्ष्मी के बैठ जाने के पश्चात् वल्लभ मिश्र विधिविधान के साथ कन्या-सम्प्रदान के लिये आगे आये। जिन पादपद्मों में पाद्य (पग-प्रक्षालन के लिये जल) निवेदन कर ब्रह्माजी ने सृष्टि-रचना की शक्ति प्राप्त की थी, नखमणियों की छटा से अंधकार नष्ट करने वाले उन्हीं चरणकमलों में वल्लभ आचार्य ने पाद्य निवेदन किया।

**''यस्याङ्घ्रिपद्मे विनिवेद्य पाद्यं प्रजापतिः प्राप जगत्सिसृक्षाम् ।**
**तत्रैव पाद्यं विदधे स वल्लभो नखद्युतिध्वस्ततमः समूहे ।।''**

तत्पश्चात् वर को रत्नजड़ित सुसज्जित सिंहासन पर बिठाकर हर्षरोमांच आदि से भरकर अर्घ्य (उपहार आदि) समर्पित कर कृतज्ञता-पूर्वक कन्या-दान भी किया। यथासमय विश्व की आर्ति का नाश करने वाले विश्वम्भर ('विश्वम्भरो विश्वभरार्तिहा') लक्ष्मीदेवी के साथ दोले

में बैठकर स्वगृह लौटे।

**एकादश सर्ग :** लक्ष्मीनारायण की दृष्टि मात्र से सभी सुमंगल मानो अपने-अपने भाग्य की घोषणा करने के लिये शचीमाँ के घर आने लगे। कुछ दिन पश्चात् प्रभु ने धनोपार्जन के लिये पूर्व देश की यात्रा की। यह चन्द्रानन विष्णु जहाँ भी गये, लोग इन्हें देखकर आनन्दित हुए। इन्हें देख -देखकर पुरुष अघाते न थे और स्त्रियाँ कहतीं—ये शुद्धदर्शन नरोत्तम किस देश के हैं? इनकी माँ ने कौन-सा पुण्य किया है? इन कन्दर्पविजयी को पहले कभी नहीं देखा। और किस भाग्यवती कन्या ने शंकर की चिर आराधना कर इन्हें पतिरूप से प्राप्त किया है? संशय नहीं कि वह लक्ष्मी है और यह नारायण। "**असौ नारायणः सैव लक्ष्मीरेव न संशयः।**"

गौरहरि उन सब पर करुणादृष्टिपात कर उनके मन में प्रीति जगाकर अग्रसर होते।

प्रभु ने पद्मावती नदी में स्नान किया। उनके स्नान-पर्श से पद्मा पापनाशक कल्याणकारी महातीर्थ बन गई। उसी के तटप्रदेश में गौरहरि अपने संगी-साथियों को लेकर वास करते और सुकृतिवानों को सुख पहुँचाते।

दयालु स्वामी ने विद्यारस का आस्वादन करते हुए वहाँ कुछेक मास ब्राह्मणों को विद्यादान किया।

इधर महाभाग्यवती पतिप्राणा लक्ष्मीदेवी शचीमाँ की पादसम्वाहन आदि सेवा करतीं, ठाकुर-सेवा करतीं। उनकी सेवा सुशीलता से शचीमाँ परम तुष्ट थीं। वे पुलकित होकर अपनी कन्या के समान उनका सस्नेह पालन करतीं।

दैवयोग से एक सर्प ने लक्ष्मीदेवी के पादमूल में दंशन किया। विषवैद्यों के किसी मंत्रोपचार से विष दूर न हुआ, तो शचीमाँ उन्हें तुलसीमालाओं से विभूषित कर जाह्नवीजल में रखकर महिलाओं के साथ हरिकीर्तन करने लगीं "**जन्हुकन्यापयोमध्ये तुलसीदामविभूषिताम्। कृत्वा वधूं सह स्त्रीभिश्चकार हरिकीर्तनम्।।**" उधर आकाश में गन्धर्वों ने, योगसिद्ध ब्रह्मा आदि देवताओं ने मंगलगान किया। जगन्माता लक्ष्मीदेवी ने अपने प्राणनाथ के निकट पहुँचने की इच्छा से श्रीकृष्ण पादपद्म स्मरण करते हुए सुरधुनी के जल में देह त्याग दी।

"**महालक्ष्मीर्जगन्माता गन्तुं स्वप्रभुसन्निधौ। स्मृत्वा कृष्णपदाम्भोजं स्वर्नद्यां देहमत्यजत्।।**" उन्होंने इन्द्र आदि को भी अगम्य, सर्वमंगलस्वरूप, लोकवन्दीय परमधाम में प्रवेश किया।

**द्वादश सर्ग :** शचीमाँ पुत्रवधु के विरह में अश्रुवर्षण कर विलाप करतीं। कहतीं—"अरे अधम सर्प! तूने यह क्या किया! मेरी बहू को छोड़ मुझे क्यों न डस लिया? मेरा लड़का उसे मेरी सेवा के लिये छोड़कर धनधान्य-उपार्जन करने छात्रों के साथ परदेश गया है। अब बहू के बिना मैं उसका मुँह कैसे देखूँगी?" बन्धु-बान्धवों के प्रबोध वाक्यों से वे किंचित् प्रकृतिस्थ हुईं और विश्वम्भर के मुख का स्मरण कर बस कृष्णनाम लेने लगीं। "**स्वस्य पुत्रवदनं स्मरती सा कृष्णनामपरिपूर्णमुखासीत्**"।

पूर्वांचल के भक्तों द्वारा भेंट में दी गई चाँदी सोना वस्त्र आदि वस्तुएं लेकर परमेश्वर यथासमय घर लौटे। उन्हें देखकर शचीमाँ तुष्ट हुईं, पर मन ही मन वधु-विरह की व्यथा से भाराक्रान्त बनी रहीं। कमलनयन प्रभु ने माँ के चरणों में गिरकर उनकी पगरज ली और सभी वस्तुएं उनके आगे रखकर मृदुमन्द हास्य के साथ विस्मित होकर कहा—"माँ! आज तुम्हारा मुख इतना मलिन क्यों है? तुम्हारी बहू...।"

पुत्रवधु की स्मृति में आँसुओं से वक्ष भिगोते हुए शचीमाँ ने सब बताया। मधुसूदन सारा वृत्तान्त सुनकर शोक और हर्ष से भरकर आत्मगोपन कर कहने लगे—"माँ! वह देववधु अप्सरा थी, इन्द्रसभा में नृत्य करते-करते क्षणभर को तालभंग कर बैठी। इस पर देवेन्द्र ने शाप दिया कि मनुज-कन्या बनकर जन्म लो। यह उनके पैरों में पड़ी, तो उन्होंने कहा—तुम ईश्वरवधु होगी; पृथ्वी पर सुरदुर्लभ महासुख भोगकर यहाँ आ जाओगी। वह अपने धाम को चली गई है। अथवा लक्ष्मीस्वरूपा जगदीश्वरी अपने प्रभु के पादपद्मों में विश्राम कर रही हैं। माँ, तुम व्यर्थ शोक मत करो। होनी होकर रहती है, सारा जगत् काल के ही अधीन है।"

"**किम्वा लक्ष्मीरूपा जगदीश्वरी निजप्रभुचरणाब्जमगात् स्वयम् ।
तदलमेव शुचा भवितव्यता भवति कालकृतं सकलं जगत् ।।**"

स्वयं भगवान् ने इन्द्र की चर्चा की, इसमें आश्चर्य नहीं। वे अपने

प्रकट वैभव को छिपाने के लिये ऐसा करते हैं। वस्तुत: उन्हीं की वैभवशक्ति से ब्रह्मा जगत् की सृष्टि करते हैं और महेश्वर उसका संहार।

**त्रयोदश सर्ग :** शचीमाँ ने पुत्र के (दूसरे) विवाह के विषय में सोचकर द्विजवर काशीनाथ से कहा—"सनातन मिश्र से कहो कि वे अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र के साथ कर दें।" सनातन मिश्र ने पत्नी और बन्धुबान्धवों के साथ इस प्रस्ताव पर विचार-विमर्श कर एक ब्राह्मण के माध्यम से अपनी रूपगुणसम्पन्न कन्या विश्वम्भर को दान करने की इच्छा व्यक्त की। ब्राह्मण ने शचीमाँ को प्रणाम कर कहा—"विष्णुप्रिया तुम्हारे सर्वशोभासम्पन्न पुत्र को पतिरूप में पाकर अपना नाम सार्थक करें और श्रीमद् विश्वम्भर प्रभु भी विष्णुप्रिया से विवाह कर उसी प्रकार परम सुखी हों जिस प्रकार कृष्ण रुक्मिणी से विवाह कर परम आनन्दित हुए थे।"

सनातन मिश्र के यहाँ विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं कि एक गणक (ज्योतिषी) ने आकर कहा—"मार्ग में श्रीमद् विश्वम्भर प्रभु से भेंट हुई। मैंने कहा—हे भगवन्! आज तुम्हारे विवाह का अधिवास होगा, तुम विलम्ब क्यों कर रहे हो? यह सुनकर वे बोले—तुम कहाँ किसके विवाह का संवाद लाये थे? उनकी यह बात सुनकर मैं आपके पास आया हूँ; अब आप जो उचित समझें, कीजिये।"

गणक की बात सुनकर सनातन मिश्र बड़े दु:खी हुए। धैर्य धारण कर बोले—"मैंने इन सब द्रव्यों और अलंकार आदि की जोगाड़ की, पर मेरा दुर्दैव, इनका आदर नहीं हुआ। मैं क्या करूँ? मैंने तो किसी के प्रति कोई अपराध नहीं किया।"

सनातन मिश्र की पत्नी स्वयं दु:खी थीं, पर पति को सान्त्वना देती हुई बोलीं—"यदि स्वयं श्रीमद् विश्वम्भर विवाह नहीं करते, तो अपराध कैसा? हाँ, हमें अपनी ओर से कुछ नहीं कहना। आप दु:खी न हों, आनन्द से रहें।" तब वे बन्धुबान्धवों के साथ विचारविमर्श कर बोले—"यदि इस विवाह को विश्वम्भर का अनुमोदन नहीं, तो हम लोग भी स्वीकार नहीं करेंगे।"

भगवान् विश्वम्भर को पता चल गया कि विष्णुभक्त विमत्सर ब्राह्मण दम्पति दु:खी हैं, क्रोध और लज्जा से अभिभूत हैं।

**चतुर्दश सर्ग :** भगवान् कृष्ण (विश्वम्भर) ने करुणा कर सनातन और उनकी पत्नी के दु:ख की बात सोचकर एक ब्राह्मण के द्वारा प्राकृत जन की तरह अनुनय-विनयपूर्वक उनकी कन्या के साथ विवाह की इच्छा व्यक्त की। साधु-ब्राह्मण आये, मृदंग-पणव आदि बजे, वेदध्वनि हुई, धूप-दीप-पताकाओं से चारों दिशायें मुखरित हुईं। प्रभु ने ब्राह्मणों के साथ स्वस्तिवाचन करते हुए विधिवत् सभी क्रियायें सम्पन्न कीं। फिर ब्राह्मणवृन्द आदि को प्रचुर मात्रा में माल्य-चन्दन, गन्ध, ताम्बूल आदि दान किये। इसी समय श्रद्धा और आनन्द से भरे श्रीसनातन ने आकर अपने महात्मा दामाद का अधिवास कार्य सम्पन्न कराया और अपनी पुत्री के अधिवास कार्य भी पूरे किये।

अगले दिन सुबह प्रभु ने स्नान-आह्निक आदि के पश्चात् नान्दीमुख श्राद्ध द्वारा पितृगण की अर्चना की। इसी समय सहसा कुछेक परमोज्ज्वल ब्राह्मण बालकों ने आकर कोटि-कन्दर्प के समान कान्तियुक्त विश्वम्भर को वस्त्र-अलंकार-माल्य-गंध आदि से विभूषित किया। उधर विवाह का समय निकट जानकर सनातन मिश्र ने वर को सादर लिवा लाने के लिये उत्तमोत्तम ब्राह्मण भेजे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर निवेदन किया— विवाह का शुभ मुहूर्त आ रहा है, आप अनुष्ठान के लिये श्रीसनातन पंडित के घर प्रस्थान करें। इन ब्राह्मणों के सौभाग्य का वर्णन कौन कर सकता है?

प्रभु माँ को प्रणाम कर जयध्वनि, वेदध्वनि, वाद्यध्वनि के बीच शारदीय चन्द्रकिरणों-जैसी शुभ्र शिविका (पालकी) में जा बैठे। वे स्वर्णगौर क्षीरसमुद्र में (द्वितीय) सुमेरुशृंग की तरह जगमनमोहन लावण्य बिखेरने लगे।

वर को निकट आया देखकर सनातन मिश्र ने हर्षातिरेक से रोमांचित होकर पाद्य आसन आदि से सत्कार किया और मालतीमाल-सुशोभितवक्ष तप्तकांचनवर्ण गौरहरि को माल्य, वस्त्र अनुलेपन आदि समर्पित कर वरण किया। उस समय विश्वम्भर को देखकर लगा जैसे गंगा की दो धाराओं से समन्वित सुमेरु शृंग ही सुशोभित है। चन्द्रवदन कमलनयन जमाई को देखकर सनातन मिश्र की पत्नी ने आनन्द से भरकर भद्रमहिलाओं के साथ दीपमाला स्वस्तिक खील आदि लेकर वर की आरति की। तत्पश्चात् सनातन मिश्र ने कन्या को लाकर उनके चरणों में समर्पित

किया। विष्णु और विष्णुप्रिया एक-दूसरे पर पुष्प-वर्षण करने लगे। लगा जैसे साक्षात् महानन्द अवतीर्ण हुआ है।

**"ववर्ष पुष्पैरन्योऽन्यं विष्णुर्विष्णुप्रिया च सा ।**
**साक्षादेव महानन्दोऽवततार स्वयं विभुः ।।"**

जैसे द्वारका में कृष्ण और रुचिरवन्दना रुक्मिणी सुशोभित हुए, वैसे ही गौर-विष्णुप्रिया चन्द्र और रोहिणी की तरह शोभा को प्राप्त हुए। विवाह महोत्सव पूरा होने पर जगद्गुरु भार्या के साथ अपने घर लौटे। विश्वम्भर-जननी शचीमाँ ने भद्र महिलाओं के साथ परमानन्दपूर्वक दोनों का गृह-प्रवेश कराया।

**पंचदश सर्ग :** विश्वम्भर ने वाग्मिता में वृहस्पति के तेज और काव्यरचना में शुक्राचार्य की प्रतिभा से चन्द्रमा का सौन्दर्य हरण किया। लगता है, स्वयं प्रभु धरा पर अवतीर्ण हुए तो वृहस्पति आदि ने वे गुण उन्हें अर्पित कर दिये। जिन्होंने पूर्व जन्मों में पुण्य अर्जित किया था, उन ब्राह्मणों को प्रभु विद्यादान करने लगे। अहा, जगद्गुरु स्वयं जिनके अध्यापक बने, उन विप्रों के गुणों का वर्णन कैसे करूँ?

हेमकान्ति गौरहरि सौन्दर्य, माधुर्य, विलासरंग आदि से युक्त हो विराजने लगे। विष्णुप्रिया देवी पाद-सम्वाहन करतीं और वे रसिकशेखर रसराज रूप से प्रकट होते। वे शिष्यों के साथ विद्याविलासरस में डूबे भुजदण्ड हिलाते हुए चलते। घर लौटकर विष्णुप्रियाजी के साथ माँ के पास बैठकर उन्हें सुखी करते।

लोकशिक्षा के लिये उन्हीं अच्युत की पितृकार्य करने की इच्छा हुई, तो वे ब्राह्मणों के साथ गया गये। मार्ग में प्राकृत जनों की तरह हास-परिहास कर सभी को आनन्द प्रदान किया; हरिणों के कौतुक देख-देखकर स्वयं आनन्दित हुए। 'चोरान्धयक' (चिरा) नामक नदी में स्नान और आह्निक के पश्चात् देवलोक पितृलोक को यथाविधि तर्पण आदि किया। तत्पश्चात् मन्दार पर्वत पर देव-दर्शन कर तलहटी में एक ब्राह्मण के घर पहुँचे। लोकशिक्षा के लिये प्रभु हठात् ज्वर-ग्रस्त हो गये। 'मनुष्य-शिक्षामनुदर्शयन् प्रभुज्ज्वरेण सन्तप्ततनुर्बभूव।"

'अरे! बीच में ही शरीर अवश हो गया। गया में पितृश्राद्ध कैसे होगा? शुभ कार्य में विघ्न आ गया'—यह सोचकर प्रभु बड़े चिन्तित

हुए। फिर यह सोचकर कि ज्वर की शान्ति के लिए द्विजपद सेवा ही उपाय है, प्रभु ने ब्राह्मणों की चरणसेवा कर उनका चरणोदक पान किया। ज्वर-निवृत्ति हुई। इस प्रकार प्रभु ने अपने साथियों को द्विजपदभक्ति दिखाकर पुनपुना नदी में पितृदेव आदि का अर्चन किया। तत्पश्चात् नदी पारकर राजगिरि (राजगृह या गिरिव्रजपुर) तीर्थ गये; लोकशिक्षार्थ ब्रह्मकुण्ड में पितृपूजा की।

गया में प्रभु ने ईश्वर पुरी नामक हरिभक्त संन्यासीवर के दर्शन किये। उन्हें भक्तिभाव से दण्डवत् प्रणाम कर प्रभु ने कहा—'आज बड़े भाग्य से आपके दर्शन हुए। हे करुणामय प्रभो! मैं भवसागर पारकर श्रीकृष्णपादपद्मों का अमृत आस्वादन कर सकूँ—ऐसा उपदेश दीजिये।' ऐसे वचन सुनकर उन अन्तर्यामी पुरी महाशय ने मंत्र प्रदान किया। भक्तिविभावित गौरहरि वह दशाक्षर मंत्र प्राप्तकर पुरीराज का स्तव करने लगे—'आपके श्रीचरणसंग से आज मैं परम कृतार्थ हुआ; श्रीकृष्णपादपद्मों का मधुमद आस्वादन कर पूर्णकाम हुआ। अब इसकी सहायता से दुस्तर संसार से त्राण पाऊँगा।'

"**श्रीकृष्णपादाब्जमधुन्मदा च सा यथा तरिष्यामि दुरन्तसंसृतिम् ।**"

**षोड़श सर्ग :** प्रभु ने फल्गुतीर्थ (नदी) में पितृदेवता का अर्चन और प्रेतशिला पर पिण्डदान किया। पितृलोक के उद्देश्य से ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा दी। गयासुर के मस्तक पर विराजित श्रीगदाधर (विष्णु) पादपद्मों का स्पर्श किया। सोलह वेदियों पर पितृकार्य सम्पन्न किया, तो उनके पिता श्रीमत् जगन्नाथ पुरन्दर ने स्वयं प्रकट होकर सानन्द पिण्ड ग्रहण किया—"**श्रीमज्जगन्नाथपुरन्दराख्यः प्रत्यक्षीभूय जगृहे मुदान्वितः**"— ठीक उसी प्रकार जैसे महाराज दशरथ ने श्रीराम से पिण्ड ग्रहण किया था। श्रीहरि का यह चरित्र दुर्लभतम ही है।

विष्णुपद मन्दिर में श्रीहरिपादपद्म देखकर प्रभु सोचने लगे—हरि (विष्णु) के पादपद्म देखकर भी मेरे हृदय में प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ। ठीक उसी समय दैवयोग से विष्णुपद सुशीतल जल से प्रक्षालित हुए; प्रभु की देह कम्पित-पुलकित हो उठी और प्रेमाश्रुओं की शत-शत धाराओं ने उनका वक्षस्थल सींच दिया। श्रीकृष्णपादपद्मों के उस प्रेम ने उन्हें ऐसा विह्वल किया कि वे साथियों से अलग हो गये और वृन्दावन जाने की

सोचने लगे। तभी आकाशवाणी हुई—'हे देव! अभी घर जाओ, यथासमय वृन्दावन जाना....आप सर्वेश्वर हैं, सभी कार्यों को करने न करने में पूरी तरह समर्थ हैं, तथापि इस समय भृत्य का कहा मानिये।' यह सुनकर प्रभु अपने जनों के साथ नवद्वीप लौट आये। आकर माँ के चरणों में प्रणाम किया, तो वे आनन्द से अश्रु-वर्षण करने लगीं।

प्रभु घर में रहते हुए कभी क्रन्दन करते, कभी उच्च शब्द। कभी श्रीवास आदि के साथ नवीन कीर्तन करते, भावविभोर होकर नृत्य करते। लोकशिक्षा के लिये विभिन्न अवतारों के चरित्र प्रदर्शित करते। कभी रह रहकर विकट चीत्कार और कभी कम्पित देह से गद्‌गद् स्वर में 'हरे कृष्ण हरे' कहते।

और एक दिन .....हरिपादपद्मों में सबकुछ अर्पित कर गौरहरि संन्यासी हो गये; मुकुन्द आदि भक्तजनों के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथपुरी चले गये। जगन्नाथ देव के दर्शन कर परम आनन्द प्राप्त किया। तत्पश्चात् साधुजनों के साथ वे श्री राघवदेव-निर्मित सेतुबन्ध (रामेश्वर) गये। वहाँ सप्त तमाल वृक्षों को देखकर उन्हें आलिंगन कर प्रभु ने रह-रह कर रोदन किया, तत्पश्चात् कूर्मक्षेत्र पहुँचकर कूर्मरूपी जगदीश्वर के दर्शन किये। दक्षिण से लौटकर कुछ दिन पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहकर प्रभु ने मथुरा-यात्रा की।

व्रज में श्रीकृष्ण-पादपद्मांकित लीला-स्थलियों को देख-देखकर वे बार-बार भूमि पर गिरते, लोटपोट करते और रोते। उस धाम में प्रेमामृत आस्वादन में कुछ दिन व्यतीत कर साधुजनों के साथ प्रभु परमधाम पुरुषोत्तम लौट आये। प्रभु की इस तीर्थयात्रा की कथा सुनकर मनुष्य को गयायात्रा का फल मिलता है और देहावसान पर विशुद्ध गति प्राप्त होती है।

## द्वितीय प्रक्रम

**प्रथम सर्ग :** यह सब चरित्र सुनकर दामोदर पंडित बोले—"लीलानिधि प्रभु ने नवद्वीप में कौन-कौन-सी लीला की, विस्तार से बताओ। यह लीला सभी के लिये कर्णरसायन है।"

'हे चैतन्यचन्द्र! तुम्हारे पदनखचन्द्र की कान्ति मुझ शरणागत की एकादश इन्द्रियों को, आत्मा के अन्तर-बाह्य को परिपूर्ण करे, नित्य

पोषण करे, आनन्द प्रदान करे। जो लोग तुम्हारे पादपद्म देखकर भी तुम में परमेश्वर-बुद्धि नहीं रखते, वे मोहवशवर्ती और रसभावहीन हैं; वे ही तुम्हारी महा ऐश्वर्यमयी माया से मोहित हैं। देवगण भी तुम्हारे स्वरूप को नहीं जानते, फिर अन्य की तो बात ही क्या? हे करुणार्द्र मूर्ति! हे मुकुन्द! तुम जिन पर कृपा करते हो, वे ही तुम्हें भजते हैं, तुम्हारा तत्त्व समझते हैं। हे वरेण्य! नृहरे (नरहरि)! करुणामृत-सिन्धु! मैं तुम्हारे श्रीचरणसहस्रदल को प्रणाम कर तुम्हारी लीला का वर्णन करता हूँ। आज्ञा दीजिये, शक्ति संचार कीजिये जिससे मेरी वाणी तुम्हारे कथामृतरस से भर उठे।'—इस प्रकार श्रीचैतन्यदेव के कृपा-आशीर्वाद की प्रार्थना कर मुरारि ने आगे की कथा आरम्भ की—

(गया से लौटकर) प्रभु प्राय ही प्रेमाश्रु वर्षण करते; ब्राह्मणों को विद्या-दान करते। एक दिन उन्हें सुप्त अवस्था में रोते देखकर शचीदेवी ने विस्मित होकर कहा—"वत्स! तुम क्यों रो रहे हो?" प्रेमविह्वल विश्वम्भर ने उत्तर न दिया, तो वे चिन्ता करने लगीं। कुछ समय पश्चात् उन्हें जब पता चला कि गौर का यह भाव प्रेम का लक्षण है, तो उन्होंने विनयपूर्वक गोविन्दचरणों में भक्ति की प्रार्थना की। विश्वम्भर से बोलीं—"वत्स! तुमने जहाँ भी कोई धन प्राप्त किया है, मुझे लाकर दिया है। गया में प्रेम नामक जो देवदुर्लभ धन पाया है, वह भी दो जिससे मैं निरन्तर कृष्णरससागर में विहार करूँ।" "**प्रेमाख्यं किं धनं लब्धं गयायां देवदुर्लभम्। ★★ यथा कृष्णरसाम्भोधौ विहरामि निरन्तरम् ।।**"

वे बोले—"माँ! वैष्णवों के अनुग्रह से तुम्हें भी प्रेम प्राप्त होगा।"

श्रीचैतन्यदेव ने ब्राह्मणों से आदरपूर्वक कहा—"मेरी माँ प्रेम की प्रार्थना कर रही हैं। उन्हें सुदुर्लभ हरिभक्ति प्राप्त हो, आप सब ऐसी कृपा कीजिये।"

इस पर ब्राह्मण बोले—"आपके कथनानुसार इन्हें जगन्नाथ में मुनि-दुर्लभ प्रेमभक्ति प्राप्त होगी।"

यह सुनकर साक्षात् भक्तिस्वरूपिणी शचीदेवी श्रीहरि में दृढ़ भक्ति प्राप्त कर प्रेम से भर उठीं। "**तच्छ्रुत्वा श्रीशचीदेवी साक्षाद् भक्तिस्वरूपिणी । लब्ध्वा हरौ दृढ़ां भक्तिं प्रेमपूर्णा बभूव ह ।।**"

गौर अश्रुवर्षण कर रोने लगते। उनके नासिका-रन्ध्र श्लेष्मा से भर

जाते। वे शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी के घर पृथ्वी पर लोटपोट करने लगे, उनकी नासिका से श्लेष्माधार प्रवाहित होने लगीं। शुक्लाम्बर उस श्लेष्मा को निकाल-निकाल कर दूर निक्षेप करने लगे। प्रभु दिनभर रोते रहे। प्रदोषकाल में प्रकृतिस्थ हुए, तो बोले–'यह क्या दिन है?'' लोगों ने कहा–''रात हो गई है।''

इसी प्रकार प्रभु रातभर रोदन करते, अगले दिन एक पहर बीत जाता तो उन्हें बाह्यावेश होता। तब वे पूछते–''रात कितनी है?'' उत्तर मिलता–''यह दिन है।'' प्रेमविभोर रहने के कारण उन्हें दिन-रात का भी ज्ञान न रहता।

कभी हरिनाम सुनते ही प्रेम-विह्वल होकर पृथ्वी पर दण्डवत् गिर पड़ते; देह कम्पित हो जाती। कभी बड़े आदर से कृष्ण गोविन्द नाम गाते-गाते कम्प-रोमांच से भर उठते। इस प्रकार कभी भाव-विभोर, कभी प्रकृतिस्थ। प्रकृतिस्थ होते, तो स्नान कर जगत् पति (गौर) पूजा करते। भगवान् को अन्न निवेदन कर प्रसाद पाते। कभी ब्राह्मणों को पढ़ाते और रात के समय नृत्य-गायन करते। इस तरह लोकशिक्षा के लिये वे लोकगुरु नित्य नाना प्रकार से हरिप्रेम प्रकट करते। ''**कुर्वन् लोकगुरुर्लोकशिक्षां चक्रे स नित्यशः । स एव भगवान् कृष्णो लोकानुग्रहकाम्यया ।।**''

**द्वितीय सर्ग :** एक दिन श्रीवास पंडित और उनके भाइयों के साथ जाते-जाते प्रभु ने एकाएक वंशीध्वनि सुनी। सुनते ही वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। क्षणभर पीछे प्रकृतिस्थ हुए तो रोने लगे।

वे जगदीश्वर कमलापति कभी लौकिक लीला करते हुए नवद्वीप-विहार करते।

श्रीवास-भवन में श्रीवास पंडित, श्रीराम पंडित, मुकुन्द वैद्य आदि के साथ प्रेम-पुलकित होकर दिन-रात नृत्य-कीर्तन करते।

एक दिन अपने ही घर में वे परम विह्वल होकर रोते हुए कहने लगे–''कहाँ रहूँ, कहाँ जाऊँ? श्रीहरि में मेरी रति-मति कैसे हो?'' तभी आकाशवाणी हुई–हे भगवन्! तुम अपने को श्रीहरि का अंश ही समझो। जीवों को प्रेमभक्ति वितरण करने के लिये ही तुम धरा पर अवतीर्ण हुए हो। खेद मत करो। कलियुग में पृथ्वी पर कीर्तन नामक यज्ञ

तुम्हारी कृपा से ही सुसम्पन्न होगा, इसमें सन्देह नहीं है। "**अवतीर्णोऽसि भगवन् लोकानां प्रेमसिद्धये। खेदं मा कुरु यज्ञोऽयं कीर्तनाख्यः क्षितौ कलौ।। त्वत्प्रसादात् सुसम्पन्नो भविष्यति न संशयः।**"

एक दिन प्रभु मुरारि वैद्य के घर गये। ठाकुरकक्ष में जाकर बैठ गये। जैसे पर्वत निर्झर-जल से भर जाता है, वैसे ही वे अजस्र प्रेमाश्रुओं से भर उठे। 'अहो! यह पर्वताकार महाबली वराह अपने दोनों दाँतों से मुझे मारने आ रहा है'—यह कहते हुए वे पीछे हटने लगे। फिर यह कहकर कि 'अरे! इस शूकरोत्तम ने मुझे बड़ा पीड़ित किया' वे शीघ्रता से पुनः पीछे हट गये। क्षणभर पीछे ही प्रभु स्वयं वराह रूप धारण कर पृथ्वी पर घुटने रखकर दोनों हाथों से चलने लगे। "**ततः क्षणेनेश्वरत्वं भावेन दर्शयन् स्वयम्। जानुभ्यां भूमिमालम्ब्य करयुग्मेन स व्रजन्।।**" प्रभु के कमलनयन घूमने लगे, भीषण हुंकार ध्वनि होने लगी। उन्होंने दाँतों से एक पीतल का जलपात्र उठा लिया। क्षणभर मुँह ऊपर किये रहे फिर उस पात्र को रखकर मुरारि से बोले—मेरे स्वरूप का वर्णन करो। "**वर्तुलाम्बुजनेत्रेण हुंकारेणानुनादयन्। दधार दशनाग्रेण पैत्तलं जलपात्रकम्।। क्षणमुन्मुखतां कृत्वा पश्चाद्धृत्वा तु पैत्तलम्। पात्रमूचे स्वरूपं मे वदस्वेति मुरारिकम् ।।**"

ईश्वर के दर्शन से विस्मित होकर, दण्डवत् गिरकर मुरारि ने कहा 'हे वनजेक्षण (पद्मलोचन) भगवन्! मैं तुम्हारा स्वरूप नहीं जानता। हे पुरुषोत्तम! तुम स्वयं अपना स्वरूप जानते हो, अन्य कोई नहीं।' मुरारि यह गीतोक्त वाक्य बार-बार कहने लगे।

मुरारि की बात सुनकर प्रभु सुमधुर स्वर में बोले—'वेद क्या मुझे जान सकते हैं?'

मुरारि ने उत्तर दिया—'तुम्हें जानने की शक्ति वेदों में भी नहीं, तुम सदा ही गुह्य (निगूढ़) हो।'

यह सुनकर भगवान् बोले—वेद मेरी बड़ी विडम्बना करते हैं। मुझे 'अपाणिपाद' (बिना हाथ-पैरों का) बताते हैं। यह कहकर 'वेदसारज्ञ सर्ववेदार्थनिर्माता भगवान्' ने (उपनिषद् का) यह श्लोक पढ़ा—

"**अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ।।**"

(भगवान् बिना हाथ-पैरों के होकर भी ग्रहण करते हैं और चलते हैं; बिना नेत्रों के होकर भी देखते हैं; कर्णरहित होकर भी सुनते हैं। वे विश्व की हर बात को जानते हैं पर उन्हें कोई नहीं जानता। तत्त्वज्ञजन उन्हें पुराणपुरुष कहते हैं।)

प्रभु ने इस वेदवाक्य को हँस-हँस कर पढ़ा और कहा—"निश्चित ही वेद मुझे नहीं जानते।"

अम्बष्ठ बोले—"हे भगवन्! मुझ पर कृपा कीजिये।"

दयामय प्रभु ने कहा—"मुझ में (मेरे प्रति) प्रेम हो।" यह कहकर वे सहास्यवदन अपने घर चले गये।

एक दिन प्रभु ने श्रीवास पंडित के घर बैठकर (वृहन्नारदीय पुराण के) इस श्लोक की व्यख्या की—

**"हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।**
**कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।"**

कलियुग में एकमात्र हरिनाम ही साक्षात् पुरुषोत्तम हैं; इसी का आश्रय लो; अन्य उपाय (ज्ञान, कर्म, योग आदि) नहीं। 'ना' शब्द का अर्थ है पुरुष, अर्थात् आदिपुरुष श्रीहरि। वे कलियुग में मूर्ति धारण किये हैं; उन्हें नाम-स्वरूप ही जानना। वे केवल अर्थात् एक अद्वितीय तत्त्व हैं। श्लोक में 'हरिनाम' तीन बार आया है—जीवों का अवश्य कर्तव्य निर्धारित करने के लिये। जीवों की समस्त पापराशि नष्ट करता है, यह बताने के लिये 'एव' कार का प्रयोग हुआ है। 'केवल' शब्द सर्वतत्त्वप्रकाशक है (नामरूपी कृष्ण ही सभी तत्त्वों की प्रकाशभूमि हैं; वही कृष्णप्रेम का आस्वादन करानेवाले हैं)। जो इसकी अन्य प्रकार से व्याख्या करेगा, उसकी गति नहीं, गति नहीं। यह बात स्वयं सर्वदेवमय पुरुष ने शूकरावेश में कही। कहकर वे नृत्य-कीर्तन करने लगे।

(ज्ञात हो कि 'हरेर्नाम' श्लोक की महाप्रभु की अद्भुत व्याख्या विस्तार से किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती। जो मिलती है, उसे महात्मा शिशिर कुमार घोष ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—"हरिनाम ही स्वयं भगवान् हैं। ये आदिपुरुष हैं। ये नामरूपी आदिपुरुष सभी समय जगत् में उदित नहीं होते, कलियुग में ही हुए हैं। 'केवल' शब्द का अर्थ यही है कि इन हरि को छोड़ अन्य कोई देव उद्धार नहीं कर सकते, और यह बात परम

सत्य तथा सभी शास्त्रों का चूड़ान्त सिद्धान्त है, यह समझाने के लिये तीन बार 'नास्त्येव' कहा गया है।** इससे यही समझाया है कि कलियुग में केवल हरिनाम ही गति है, अन्य देव उपासना से उद्धार नहीं।'' —अ. नि.च. 2/1)

जो व्यक्ति एकाग्रचित्त हो इस प्रसंग को नित्य श्रवण-कीर्तन करेगा, वह निश्चय ही पापमुक्त होगा और श्रीहरि में प्रेम प्राप्त करेगा। उसकी श्रीचैतन्यपादपद्मों में प्रभुबुद्धि सुदृढ़ होगी और श्रीचैतन्य की अक्षय स्मृति रहेगी।

**तृतीय सर्ग :** (एक दिन) प्रभु ने अपने भवन में सहस्र-सहस्र चन्द्रों की कान्ति से युक्त होकर कहा—''यहाँ चतुर्मुख (ब्रह्मा), पंचमुख (शिव), षन्मुख (कार्तिकेय) आदि कौन-कौन आये हैं?'' श्रीवास ने उत्तर दिया—''हे प्रभो! प्रेमरसामृत-सिन्धु आपकी सेवा की अभिलाषा से सभी देवगण उपस्थित हैं।''

अगले दिन गौरहरि ने दिव्यासन पर बैठकर अपने भक्तों को श्रीचरणस्पर्श प्रदान किया, तो श्रीवास आदि ने सिर झुकाकर प्रणाम कर उनके श्रीचरणों में सुदुर्लभ प्रेमलक्षणा भक्ति की प्रार्थना की। भक्तवत्सल प्रभु ने सबको यथेष्ट वर आदि प्रदान किये।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी ने कहा—'हे भगवन्! मैंने मथुरा द्वारका आदि तीर्थ कर लिये, फिर भी दुःखी हूँ। मेरा दुःख जानकर मुझे प्रेमभक्ति दीजिये।' प्रभु बोले—''वहाँ क्या जम्बुक (गीदड़) आदि नहीं जाते? तीर्थाटन से मेरा क्या होगा?'' यह सुनते ही शुक्लाम्बर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब जनार्दन प्रभु बोले—''तुम्हें प्रेम अभी प्राप्त हो।'' शुक्लाम्बर तत्क्षणात् प्रेमविह्वल होकर विष्णु के श्रीचरणों में पड़कर रोने लगे—''**रुरोद चरणे विष्णोर्निपत्य प्रेमविह्वलः।**'' यह देखकर सभी सानन्द कृष्ण-कीर्तन करने लगे।

सत्कुल में जन्मे महाप्राज्ञ ब्राह्मण प्रेमीभक्त श्री गदाधर सदा प्रभु के श्रीचरण-सान्निध्य में वास करते। उनके साथ रजनीयापन कर प्रभु ने कहा—'यह प्रसाद वैष्णवों को देना।' यह कहकर अपनी माला आदि उतारकर दी। भक्तवृन्द आये तो गदाधर ने वे प्रसादी वस्तुएँ उन्हें प्रदान कीं—जिसके लिये जो वस्तु प्रभु ने दी थी। सभी सानन्द सुरधुनी में स्नान

कर, जगन्नाथ-पूजन और नैवेद्य-सेवन कर देवदेवेश महाप्रभु के निकट आये।

गदाधर प्रतिदिन प्रभु के श्रीअंग पर चन्दन लगाते, माल्य आदि पहनाते। वे प्रभु के शयनकक्ष में शय्या-रचना करते और उन्हीं के साथ शयन करते, ठीक उसी तरह जैसे व्रज में श्रीराधा रत्नमन्दिर में शय्या-रचना कर श्रीकृष्ण-पार्श्व में शयन करतीं।

सन्ध्या समय प्रभु कीर्तन के लिये उत्सुकता दिखाते, तो भक्तजन भी श्रीमद् विश्वम्भर के साथ आनन्द में मत्त होकर नृत्य-कीर्तन करने लगते।

एक दिन की बात। आकाश में सघन मेघों ने घोर गर्जना की, चारों ओर बिजली चमकने लगी। हरिकीर्तन में आई उस बाधा को देखकर वैष्णवगण दुःखी और चिन्तित हुए। तब गौरहरि ने वहाँ उपस्थित होकर मन्दिरा (करताल) हाथ में लेकर राग-स्वरों को कृतार्थ करने के लिये कीर्तन आरम्भ कर दिया। देखते ही देखते मेघ पवन-वेग से खण्ड-खण्ड होकर दिग्दिगन्त में लीन हो गये, आकाश निर्मल हो गया और चन्द्रकिरणों से भर उठा। प्रभु ने चरणकमलों में पादकटक (नूपुर) धारण कर भक्तजनों के साथ नृत्य-कीर्तन किया। साध्वी रमणियों की उलुध्वनि और पुष्प-गंध से दिशायें भर गईं। आकाश से देवगण कर्णरसायन कीर्तन का आनन्द लेने लगे। अनेक जन्मों में संचित किये पुण्यों के फलस्वरूप परम शान्त भक्त ही हर्ष पुलक-अश्रु से भरकर श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करते हैं।

**चतुर्थ सर्ग :** 'हे तात! तुमने नवद्वीप को सुमधुर बना दिया है'—यह कहते-कहते वे शुक्लाम्बर नित्य ही प्रेम-विह्वल होकर पृथ्वी पर लोटपोट कर रोदन करते।

परमपुरुष गौरहरि भक्तों के कंधों पर हाथ रख नृत्य करते। सर्वांग पुलकावलि से भर जाता। कभी ईश्वर-आवेश में अपने भृत्यों को विविध वर प्रदान करते; कभी निजजनों के कंधों पर चढ़कर और रात के समय कीर्तन महोत्सव कर उन्हें सुखी करते।

एक दिन भूमि पर बैठकर तालियाँ बजा-बजाकर बोले—'तुम लोग मेरा खेल देखो! मैं यह अद्‌भुत बीज रोप रहा हूँ। देखो, क्षण भर में ही

यह अंकुरित होकर वृक्ष बन गया! और यह देखो! इसमें पुष्प खिले, फल आ गये। और देखो, फल पक गये, मैंने फल संग्रह किये। और अब...न वे फल, न वह वृक्ष। यह सब माया द्वारा रचित था। माया द्वारा किये सभी कर्म अनर्थक होते हैं, पर ईश्वर-सेवा हेतु किये अनुष्ठान से विपुल (प्रेम) धन प्राप्त होता है। ईश्वर के लिये किये कर्म सार्थक होते हैं, इसलिये सुधीजन भगवत्सेवा हेतु ही सब कार्य करते हैं।'

तब भगवान् ने अम्बष्ठ मुकुन्द दत्त से कहा—'तुम क्या ब्रह्मविद्या का समर्थन करते हो?' यह कहका उन अरिन्दम (शत्रुओं के दमनकर्ता) ने एक श्लोक पढ़ा—

**'रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दचिदात्मनि ।**
**इति रामपदेनाऽसौ परं ब्रह्माभिधीयते ।।'**

(योगीगण अनन्त सत्यानन्द चिदात्मा में रमण करते हैं, इसीलिये 'राम' पद में परब्रह्म ही ध्वनित होता है।)

प्रभु ने मुकुन्द पर पुनः शासन करते हुए कहा—'तुम चतुर्भुज मूर्ति के ध्यान को ही बड़ा मानते हो? तुम्हारे मत में द्विभुज मूर्ति का ध्यान उतना महत्वपूर्ण नहीं? परमेश्वर में भेदबुद्धि रखने से दुःख ही हाथ लगता है। यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो यत्नपूर्वक द्विभुज मूर्ति का ध्यान करो। इससे सभी फल प्राप्त होंगे।'

यह सुनकर श्रीगौरांग-पादपद्मों के मधुकर गायकवर मुकुन्द सिर झुकाकर प्रभु से बोले—"मैंने सुरधुनी के जल में खूब स्नान किया है, वैष्णवों की पगरज से अपने अंग को अलंकृत भी किया है, अब आप अपना पादपद्मरूपी यह छत्र मेरे मस्तक पर रखकर मुझे अपने दास्य से अभिषिक्त कीजिये।"

यह सुनकर भगवान् ने सन्तुष्ट होकर अपने चरणकमल मुकुन्द के सिर पर रख दिये। मुकुन्द का सर्वांग रोमांच से और आँखें आँसुओं से भर गईं। तब पद्म-लोचन भगवान् मुरारि से बोले—"तुमने अध्यात्मपरक रचना क्यों की है? जीवित रहने की इच्छा हो या श्रीहरि के प्रेम की स्पृहा हो, तो वह अध्यात्म संगीत त्यागकर श्रीहरि के गुणगान में श्लोक रचो।"

प्रभु के वचन सुनकर श्री नारायण गुप्त नामक वैद्य ने सविनय निवेदन किया—"प्रभो! इन्हें आज्ञा कीजिये कि भक्तरूप में तुम्हारे ही

अवतार ये मुरारि स्नेहसमुद्र गुरुदेव का गुणगान करें।''

इस पर प्रभु ने सहास्यवदन कहा—''ऐसा ही होगा। यह वैद्य (मुरारि) जो कहेगा, वही सुसत्य होगा।'' **'यद्वदिष्यत्यसौ वैद्यस्तत् सुसत्यं भविष्यति'।**

शुद्ध सदाचारी श्रीवास पंडित अपने भाइयों के साथ बड़े विधि-विधान से ठाकुर-सेवा करते, हरिगुणगान करते। छोटे भाई श्रीराम पंडित सभी के प्रिय थे और भातृसेवा में लगे रहते। ये दोनों भाई विश्वम्भर को बड़े प्रिय थे। चक्रपाणि प्रभु ऋषियों से घिरे महात्मा कपिल की तरह श्रीवास-अंगन में नृत्य क्रीड़ा करते।

एक दिन प्रभु छात्रों को पढ़ा रहे थे, तो एक ब्राह्मण बालक ने कहा—''श्रीकृष्ण भी तो माया-रचित हैं।'' खल की यह बात सुनते ही प्रभु ने हाथों से अपने कान बन्द कर लिये और शिष्यों के साथ जाकर वस्त्रोंसहित सुरधुनी में स्नान किया।

जो व्यक्ति प्रभु की इस लीला का पाठ या श्रवण करेगा, उसे यज्ञ का फल प्राप्त होगा, श्रीहरि की विमल भक्ति-स्मृति उपलब्ध होगी।

**पंचम सर्ग :** एक दिन प्रभु श्रीवास आदि के साथ नृत्य-कीर्तन करते हुए अद्वैत आचार्य के दर्शन की उत्कण्ठा से उनके आवास पर शान्तिपुर गये। निज जनों को वैष्णव में विष्णुबुद्धि रखने की शिक्षा देने के लिये प्रभु ने आचार्य के निकट पहुँचकर उन्हें भूमि पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया। यह देखते ही अद्वैत आचार्य भी उठकर ससम्भ्रम उनके चरणों में दण्डवत् जा गिरे। प्रेम और उत्कण्ठा से भरकर दोनों आलिंगनबद्ध हो गये। दोनों ही अश्रुकम्प पुलक आदि से भर उठे। तत्पश्चात् बैठकर प्रभु मनोहर, पापनाशक, प्रेमदायिनी हरिकथा कहने लगे। अद्वैत आचार्य बोले—''जो मूढ़ ऐसा कहते हैं कि कलियुग में पृथ्वी पर भक्ति नहीं, वे आकर देखें।'' ''**.......भक्तिर्नास्ति कलौ क्षितौ । इति मूढ़ा वदन्ते ये ते पश्यन्त्वद्य चक्षुषा।।**''

इस पर भगवान् गौरहरि बोले—''इस संसार में सर्वसार सुखकर भक्ति ही तो है। जो कहता है—नहीं है, उसका जन्म निरर्थक है। जिसके हृदय में कृष्णभक्ति है, उसका कर्मबन्धन नष्ट हो जाता है और प्रेम प्राप्त होता है।''

तभी एक अवैष्णव ब्राह्मण को आता देख श्रीवास पंडित बोले—"यह श्रीकृष्णोत्सव में विघ्न डालने आ गया।" यह सुनकर प्रभु ने कहा—"चिन्ता मत करो, आनन्द से रहो। यह यहाँ नहीं आयेगा।" वह ब्राह्मण विष्णुमाया से कुछ ऐसा विमोहित हुआ कि वहाँ न आया।

बहरहाल, ऐश्वर्य प्रकाशित करते-करते कृष्णप्रेम में आविष्ट होकर श्रीवास के दायें स्कन्ध पर अपना दायाँ हस्त, गदाधर के बायें स्कन्ध पर बायाँ हस्त और श्रीराम पंडित की गोद में अपने पादपद्म रखे गौरहरि अद्वैतमहेश्वर के सम्मुख आनन्द करने लगे।

प्रभु ने अद्वैत आचार्य के घर चन्दन आदि से अंग चर्चित किया। नृत्य-कीर्तन कर प्रसाद पाया। आचार्य ने उनका प्रेमानन्द-महोत्सव देखकर स्वयं को कृतार्थ माना।

गौरहरि ने अध्यात्म तत्त्व की चर्चा आरम्भ की। बोले—"एक हरि ही जगत् के स्वामी हैं। वे पृथक् पृथक् आधारों में व्यष्टिरूप से स्थित हैं। संहार-(प्र)लय के समय भी वे अकेले ही अवस्थान करते हैं। वे हरि सभी जीवों के भीतर-बाहर साक्षीरूप में रहते हैं; कारणों के कारण हैं।"

**"एक एव हरिः स्वामी व्यष्टिरूपतया स्थितः ।।**
**संहृतः स्वयमेवैकस्तिष्ठत्यात्मा स्वयं प्रभुः ।**
**सर्वस्यान्तर्बहिः साक्षी कारणानाञ्च कारणम् ।।"**

ऐसा कहकर प्रभु ने अपना हाथ पसार कर मुठ्ठी बाँध ली और पुनः तत्त्वकथा आरम्भ की। बोले—"जगत् में पदार्थ मात्र-जिस पदार्थ की भी उत्पत्ति है, वह, अनर्थ रूप है। उसमें भी नित्य सद्रूप की ही अवधारणा होती है। ब्रह्म के एकत्व ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है, बहुस्वरूपत्व देखने से किसी को मुक्ति नहीं मिल सकती। मेरे हाथ की इन दो अँगुलियों को देखो। एक को मधुसिक्त कर लें, तो तुम उसका लेहन करोगे। दूसरी यदि पीप से युक्त हो, तो उसे देखकर घृणा से भरकर क्षणभर को अन्य दिशा में देखना भी नहीं चाहोगे (आँखें बन्द कर लोगे)। अतएव निर्भेद (उपाधि रहित) ब्रह्मज्ञान ही सब प्रकार से मंगलमय है (तात्पर्य यही है कि जब कोई वस्तु उपाधियुक्त होती है, उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है)। इसी प्रकार एक अनादि अव्यय पुरुष भगवान् सदा सर्वत्र विद्यमान हैं—तत्ववस्तु का यह रसबोध ही जीव को मुक्ति दे सकता है।"

**''एवमेकोऽपि भगवान् अनादिः पुरुषोऽव्ययः ।**
**सामग्रीरसतो जीवो मुक्तो भवति नान्यथा ।।''**

इस प्रकार ज्ञानयोग बताते-बताते ज्ञानगम्य जगत्पति श्रीकृष्ण के पादपद्मों की स्मृति होते ही प्रभु का श्रीअंग पुलक से भर उठा। गद्गद् स्वर में बोले—''भक्ति ही कृष्णप्रेम-प्रकाशिनी है। मेरा आर्द्रचित्त भक्त कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी नृत्य-गायन करता है। वह त्रिभुवन को पवित्र करता है, आपदाओं से सतत रक्षा करता है।''

यह कहकर 'निजभक्तिप्रकाशक श्रीमद्विश्वम्भर देव' अपने परिकरों के साथ सानन्द नृत्य करने लगे।

**षष्ठ सर्ग :** अद्वैत आचार्य भी ईश्वर विश्वम्भर के दर्शनार्थ नवद्वीप आये। उस समय प्रभु श्रीवास-भवन में थे। प्रभु एक दण्ड के आगे एक पुष्प रखकर सहास्य वदन बोले—'मैंने इस गदा की पूजा की; इससे दुष्टों पर शासन करूँगा। भक्त मुझे प्राणाधिक प्रिय हैं। भक्त के प्रति विद्वेष रखने वाला ही दुष्ट है, उसी पर नित्य शासन करूँगा। यहाँ भी एक दुष्ट है, उसे कुष्ठरोगी बनाऊँगा। बहुत योनियों तक पैशाच नरक में रखूँगा। उसके शिष्यों को भी विष्ठाभोजी शूकरयोनि देकर दण्डित करूँगा।

'मैं वन-गमन चाहता था, पर महावन तो यहीं देख रहा हूँ। कोई व्यक्ति व्याघ्र-जैसा है, कोई पाषाणतुल्य। कोई तृण की तरह, तो कोई वृक्ष के समान। और कोई पशुतुल्य है। इस प्रकार यह जगत् ही तो महा अरण्य है। ''**पशूनां सन्निभाः केचित्तेनेदं सुमहद्वनम्।**'' जो सभी का उपकार करते हैं और श्रीकृष्णपादपद्मों के मधुपान में रत हैं, वे ही तो मनुष्य कहे जा सकते हैं। सुना है, अद्वैत आचार्य यहाँ आये हुए हैं, अभी तक पहुँचे क्यों नहीं? हम लोग उनके पास चलते हैं.....।'

ठीक इसी समय उपहार लिये स्वयं आचार्य वहाँ उपस्थित हुए। भूमि पर लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया, तो प्रभु ने हाथ पकड़कर उठाया और कहा—''मैं तुम्हारे लिये ही इस पृथ्वी पर आया हूँ।'' यह कहकर प्रभु तख्त पर बैठ गये, तो उनकी आज्ञा से अद्वैत आचार्य नृत्य करने लगे। प्रभु ने परम सन्तुष्ट होकर कहा—''तुम्हारे ये बालक मुझ से प्रेमभक्ति की प्रार्थना कर रहे हैं। हे वत्स! मैं तुम्हारे कारण इन्हें यह सुदुर्लभ वस्तु दूँगा।''

यह सुनकर आचार्य आनन्द से भरकर बोले—"हे भगवन्! ये सब तुम्हारे चरणानुगत हैं। हे करुणामय! तुम्हारा वात्सल्य हो, तो जगत् में दुर्लभ क्या?"

सब लोग प्रभु को घेरकर बैठ गये। उस ज्योत्स्नाभरी रात्रि में 'महाभुज' प्रभु पुनः बोले—"हे कमलाक्ष! तुम मेरे परम भक्त हो; मैं तुम्हारे लिये ही अवतीर्ण हुआ हूँ। अब तुम गाकर, नृत्यकर सुखी हो।" भगवान् की यह बात सुनकर श्रीवास पंडित बोले—"प्रभो! ये तुम्हारे भक्त हैं; यह तो आपकी कृपा है।"

श्रीवास की बात पर प्रभु ने क्रोधित होकर उनकी भत्स्र्ना करते हुए कहा—"उद्धव और अक्रूर मेरे अतिप्रिय भक्त हैं; आचार्य क्या उनसे कम हैं? भारत में आचार्य-जैसा और कोई भक्त है मेरा? ब्राह्मण, तुम बड़े अज्ञ हो!" यह सुनकर श्रीवास भय से मौन हो गये।

तब प्रभु बोले—"तुम लोग कभी कहीं अध्यात्मचर्चा मत करना। यदि इसमें रुचि रही, तो मैं तुम लोगों को प्रेमदान नहीं करूँगा—मैं सत्य कह रहा हूँ।"

**"........अध्यात्मं न कदाचन ।**
**भवद्भिः कुत्रचिद्वापि वक्तव्यं यदि रोच्यते ।।**
**तदा प्रेमा न दातव्यो भवद्भ्यः सत्यमेव हि ।"**

इस पर श्रीवास बोले—"मैं इस प्रसंग को भूल जाऊँ और पुनः आरम्भ न करूँ, ऐसा वर दीजिये।"

और मुरारि बोले—"मैं अध्यात्म चर्चा नहीं जानता।" इस पर प्रभु ने कहा—"हाँ, तुम जानते हो, कमलाक्ष (अद्वैत आचार्य) से सीखी है।" प्रभु के मुख से यह सुनकर हरिहर-पादपद्मों के मधुमत्त भक्तजन आनन्द से नृत्य करने लगे।

**सप्तम सर्ग :** उस दिन श्रीवास-भवन में गौरहरि ठीक नटराज की तरह सुशोभित थे। मस्तक पर शुभ्र नवीन वस्त्र का फेंटा; भुजाओं में सुन्दर चमकीले कंकण; कमर में चंचल धटी! और....सुन्दर नितम्बों पर अजानुलम्बित भुजायें—मानो नागराज आन्दोलित हों। चन्द्रमा को लजाती पगनखकान्ति; श्रीचरणों में सुशोभित नूपुर और विद्रुम (मूँगे) को रंजित करती पगतल की द्युति! तप्तकंचनवर्ण गौरसुन्दर निजनामपरायण अपने

भक्तों से परिवेष्टित हो ठीक उसी प्रकार नृत्य-कीर्तन करने लगे जिस प्रकार देवताओं से घिरे देवराज इन्द्र करते हैं।

जगवासियों, देवताओं और स्वयं लक्ष्मीपति को भी आनन्द देने वाले उस नृत्य-कीर्तन के पश्चात् प्रभु ने देवमंदिर को अपनी श्रीअंगकान्ति से समुद्भासित करते हुए वरोन्मुख होकर मधुर स्वर से श्रीवास पंडित से कहा—" श्री का अर्थ है भक्ति। तुम भक्ति के आवास हो, इसलिये तुम्हारा नाम श्रीवास है।"

"**श्री भक्तिरस्या वासस्त्वमतः श्रीवास उच्यते।**"

गोपीनाथ से बोले—"तुम मेरे दास हो, स्मरण है?"

फिर करुणा कर मुरारि से बोले—"अपनी वह कविता पढ़ो तो!"

आदेश पाकर मुरारि ने अपना श्रीरामाष्टक सुनाया—"**राजत्किरीट-मणिदीधितिदीपिताश... रामं जगत्रयगुरुं सततं भजामि।" (मैं उन त्रिजगत्गुरु श्रीराम का सतत भजन करता हूँ)।**

भगवान् गौरहरि ने 'रघुनन्दनराजसिंह' श्रीराम का अष्टक सुनकर मुरारि के मस्तक से अपने श्रीचरण स्पर्श कराये, उनके ललाट पर 'रामदास' लिखा और कहा—"मेरे प्रसाद से तुम रामदास हो।"

इसके पश्चात् भगवान् ने एक श्लोक पढ़ा—"**न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्ज्जिता।**" (भा० 11/14/20)

(हे उद्धव! योग, सांख्य, वेदपाठ, त्यागवैराग्य, तपस्या आदि मुझे उतना वशीभूत नहीं कर सकते, जितना परम बलवती भक्ति वशीभूत करती है।)

फिर बोले—'श्रीराम पंडित के बड़े भाई श्रीवास की सेवा ही मेरी अर्चना है। श्रीवास की सेवा करो, इसी से सबका कल्याण होगा।"

प्रभु ने श्रीवास द्वारा प्रस्तुत किये दुग्ध, ताम्बूल आदि का सेवन किया और अपना अवशिष्ट भक्तों को दिया। प्रभु का भुक्तावशेष खाकर श्रीवास की भ्रातुष्पुत्री नारायणी तो प्रेमानन्द से रोदन करने लगीं—**श्रीवासभ्रातृतनयाभर्तृका मधुरद्युतिः। प्राप्य हरेः प्रसादञ्च रौति नारायणी शुभा।।**

इस प्रकार भक्तवृन्द को आनन्द सुख-सिन्धु में डुबाते प्रभु ने पूरी

रात बिता दी।

**अष्टम सर्ग :** सुबह के समय भक्तवृन्द प्रभु के दर्शनार्थ आये, तो भगवान् मधुसूदन ने हर्ष से भरकर कहा—"हे राम! हे मुरारि! नारायण! हे मुकुन्द! 'नित्यानन्द' नाम से विख्यात भगवान् अवधूत यहाँ आये हुए हैं। तुम सब तुरन्त जाओ और उन महात्मा को लेकर आओ।"

प्रभु की आज्ञा से ये सब भक्तजन उन महापुरुष की खोज में गये, पर वे न मिले। लौटकर प्रभु को सूचित किया, तो वे बोले—"सन्ध्या के समय उन्हें यहीं देखना।"

सन्ध्या-समय जगद्गुरु गौरहरि की भेंट मुरारि से हुई, तो वे बोले—"चलो, वे पुरुषप्रवर नन्दन आचार्य के घर विराज रहे हैं, हम उनके दर्शन करें।"

मुरारि एवं अन्यान्य भक्तजनों के साथ नन्दन आचार्य के निवास पर पहुँचकर देखा कि नित्यानन्द देव सुख से बैठे हैं। उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रभु ने मधुर स्वर में हरिसंकीर्तन और सुमधुर नृत्य आरम्भ किया—"**ततः प्रणम्य तं भक्त्या भगवान्मधुराक्षरम्। हरिसंकीर्तनं कृत्वा ननर्त ललितं मुदा।।**" महायशस्वी नित्यानन्द भी प्रभु के पीछे-पीछे नृत्य करने लगे। उनका श्रीअंग पुलक से और वदन हुंकार एवं हास्य से भर उठा। नृत्य के अन्त में प्रभु ने नित्यानन्द की पगरज सभी के मस्तकों से लगाई।

नित्यानन्द के साथ घर लौटते हुए प्रभु ने भक्तों से कहा—"अहो! ये महात्मा (नित्यानन्द) कह रहे हैं कि आदमी को पहले कृष्णविषयक मंगलमय ज्ञान होता है, फिर हरिभक्ति और भोगों से विरक्ति होती है।"

घर पहुँचकर प्रभु ने शचीमाँ को सभी वृत्तान्त सुनाया।

एक दिन महाप्रभु ने नित्यानन्द प्रभु को अपने घर (भोजन के लिये) आमंत्रित किया; चन्दन से सर्वांग चर्चित कर माल्य-अर्घ्य आदि देकर उनकी पूजा की। नित्यानन्द प्रभु उस दिन वहाँ रहे फिर श्रीवास पंडित के यहाँ चले गये।

नित्यानन्द प्रभु भोजनादि के पश्चात् विश्राम कर रहे थे, तो महाप्रभु भी आ गये। महाप्रभु ने प्रिय पूर्वलीला (व्रजलीला) का स्मरण कर मधुर स्वर में नित्यानन्द प्रभु से कहा—"तुमने मेरे लिये बड़ा कष्ट उठाया है,

अतएव मुझे देखो।''

अवधूत ने उन महात्मा (गौरहरि) की बात सुनकर भक्ति से भरकर उनकी ओर देखा, पर विशेष कुछ न समझ पाये। यह जानकर भगवान् ने वहाँ उपस्थित वैष्णवों को कक्ष से बाहर जाने का आदेश दिया। सबके चले जाने के पश्चात् उन अखिलेश्वर प्रभु ने कौतुक से भरकर अपना ऐश्वर्य-माधुर्य दिखाया। नित्यानन्द प्रभु ने पहले षड़्भुजरूप, क्षणभर पीछे चतुर्भुजरूप और फिर द्विभुज मूर्ति के दर्शन किये।

**''स ददर्श ततो रूपं कृष्णस्य षड्भुजं महत् ।**
**क्षणाच्चतुर्भुजं रूपं द्विभुजश्च ततः क्षणात् ।।''**

अति अद्‌भुतरूप के दर्शन कर नित्यानन्द प्रभु हर्ष-विस्मय से अभिभूत होकर बार-बार हँसने लगे, नृत्य करने लगे। उनका श्रीअंग रह-रहकर रोमांचित होने लगा, पर प्रभु की आज्ञा से उन्होंने यह रहस्य किसी के आगे व्यक्त न किया कि 'तुम मेरे वही वृन्दावनविनोदी आनन्दमय भाई (कृष्ण) ही हो।' ''**वृन्दावनविनोदी तु भ्राता मे त्वं प्रहर्षितः।**''

जो लोग नरहरि की यह लीलागाथा सुनेंगे, वे समस्त यज्ञफल और श्रीहरि-पादपद्मों में रति प्राप्त करेंगे; उन्हें हरिनाम की निरन्तर स्फूर्ति होगी।

**''इति यः शृणोति नृहरेश्चरितं सकलं स यज्ञफलमेव लभेत् ।**
**रमते मुकुन्दचरणाम्बुरुहे हरिनाम तस्य नियतं स्फुरति ।।''**

**नवम सर्ग :** इसके पश्चात् दामोदर पंडित ने मुरारि गुप्त से कहा—''महाप्रभु ने स्वप्न में प्रभु (श्रीकृष्ण) का जो अति अद्‌भत स्वरूप देखा था, अब उसका वर्णन करो।'' मुरारि बोले—एक दिन इन नवीन कृष्ण (गौरहरि) ने स्वप्न में विविध वस्त्राभूषणों से सज्जित श्रीकृष्ण को देखा। रात्रि के समय वे अति विह्वल होकर रोदन करने लगे। शचीमाँ ने बड़े आश्चर्य के साथ इसका कारण जानना चाहा, तो प्रभु क्षण भर धैर्य धारण कर बोले—''मैंने अभी स्वप्न में नवीन मेघ की-सी कांतिवाले एक बालक को देखा है—मस्तक पर मयूरपंख, अंग में सुन्दर स्वर्ण कंकण आदि, ललाट पर कुंचित केश, हाथ में वंशी और...सूर्य की तरह उज्ज्वल पीतवस्त्र परिधान!

**"स्वप्ने मयाद्य नवनीरदतुल्यकान्ति-**
**र्मायूरपिच्छ-वराहटक-कंकणाढ्यः ।**
**बालो ललाटविलसत्कुटिलालकश्च**
**वंशीकरो रविकरोज्ज्वलपीतवस्त्रः ।।"**

बस, तभी से मेरे आँसू निकल रहे हैं, पर यह देखकर मुझे सुख भी बहुत हुआ है।"

पुत्र के मुख से यह सब सुनकर शची देवी हर्षित हुईं; उनका चेहरा चमक उठा। विश्वम्भर का श्रीअंग विपुल पुलकावलि से भर गया; अविरल नेत्रजल ने तो मानो दो प्रेमाश्रु-सागरों की सृष्टि कर दी।

श्रीवास-भवन में '**सर्वभुवनैकसुखाभिलाषी प्रेमाश्रुपूर्णवदन**' अवधूत नित्यानन्द ने गौरहरि के दुर्लभ षड्भुजरूप के दर्शन किये-दायें हाथों में शंख चक्र गदा; बायें हाथों में वेणु धनुष और पद्म; वक्षस्थल पर अति उज्ज्वल कौस्तुभ आदि; गण्डस्थलों पर दिव्य मकरकुण्डल; ललाट पर अति उज्ज्वल मणि; कण्ठ में मरकतमणि-हार नीलपद्म माल्य आदि; और.... सूर्यकिरणों-सा गौर वस्त्र परिधान! यह स्वरूप देखकर अवधूत प्रेमविवश हो गये।

नित्यानन्द प्रभु इस षड्भुजस्वरूप के पश्चात् चतुर्भुज रूप और तत्पश्चात् द्विभुज रूप देखकर हँसे। देवलोक को भी दुर्लभ श्रीहरि की यह मूर्ति देखकर वे नृत्य करने लगे और उपस्थित भक्तवृन्द को आलिंगन कर आनन्दसिन्धु में डूब गये। अट्टहास से उनके गण्डस्थल प्रदीप्त हो उठे, नेत्र मानो वारुणीपान से और भी सुन्दर हो गये। नीलवस्त्र परिधान, हाथों में हल-मूसल और बेंत-कृष्ण के बड़े भाई बलराम गौरप्रेम से परिपूर्ण हो विराजमान थे। "**नीलाम्बरो मुषललांगलवेत्रधारी कृष्णा-ग्रजो जयति गौररसेन पूर्णः।**"

तब प्रभु ने श्रीवास, श्रीराम, नारायण और मुरारि को बुलाकर कहा—"तुम लोग अद्वैत-भवन जाओ और कहो कि अवधूत आ रहे हैं।" उन सबने वहाँ पहुँचकर प्रभु का संदेश सुनाया, तो अद्वैताचार्य आनन्द से नृत्य-कीर्तन करने लगे।

इसके पश्चात् एक दिन अद्वैताचार्य प्रभु के दर्शनार्थ आये; 'प्रपन्नार्तिहर मुकुन्द' कमलनयन गौरहरि का श्रीमुख देखकर सिंहनाद

करने लगे। श्रीगौरहरि श्रीवासमन्दिर में दिव्यासन पर विराजमान होकर अपनी गलितस्वर्णकान्ति से भक्तवृन्द को इस प्रकार सुख देने लगे जैसे प्रभातकालीन सूर्य सभी के नेत्रों को सुख पहुँचाता है। उपस्थित भक्तवृन्द आनन्द-पुलकित होकर नृत्य-कीर्तन करने लगे; प्रभु को अर्घ्य-नैवेद्य आदि भेंट कर भूमि पर लोटपोट करने लगे। प्रभु ने भी उन सबको प्रसाद, वस्त्र, माल्य आदि देकर कृतार्थ किया। आनन्द-पुलकित भक्तजनों ने स्वयं को और अन्य सभी को मंगलमय रूप में अनुभव किया; उन्हें मोक्ष भी तृणवत् लगा। "**आत्मानमन्यञ्च विदुर्गताशुभं कैवल्य-मत्यल्पतरं प्रचक्रुः।**"

भक्तजन दिन-रात भूल गये। सूर्योदय से सूर्यास्त तक, और फिर रातभर आनन्द में नृत्य-कीर्तन करते रहे। अगले दिन प्रभु ने आज्ञा की, तो सब अपने-अपने घर चले गये। घरों में भी वे हरिनाम-परायण रहते और स्त्री-बच्चों को जगद्‌गुरु गौरहरि का चरित्र सुनाते।

**दशम सर्ग :** भक्तवृन्द गंगास्नान ठाकुर-सेवा आदि सम्पन्न कर पद्मलोचन विश्वम्भर के निकट पुनः जा पहुँचते। प्रभु भी उन्हें देखकर आनन्दित होते। श्रीकृष्णपादपद्मों के मत्त मधुकर, साधुओं के नयनानन्द, सुशीतल, नवीन चन्द्रमा की तरह सुन्दर श्रीहरिदास को प्रभु ने दृढ़ आलिंगन किया, बिठाया। माल्य-चन्दन से विभूषित कर चारों प्रकार का सुरसाल प्रसाद चर्व्य चोष्य, लेह्य, पेय दिया। प्रभु की आज्ञा से हरिदास ने वह प्रसाद-सेवन किया।

प्रसन्नवदन सुधी हरिदास निरन्तर श्रीहरिकीर्तन करते और सुख से रहते। अवधूत नित्यानन्द चलने लगे, तो प्रभु विनय से भरकर बहुत दूर तक उनके पीछे-पीछे गये और बोले—इन ब्राह्मण भद्र पुरुषों को अपना एक कौपीन दो। "**कौपीनकचेलमेकं देहि त्वमेभ्यो द्विजसज्जनेभ्यः।**"

इस पर अवधूत ने प्रभु को एक कौपीन दिया, तो उन्होंने उसे फाड़-फाड़ कर भक्तों में बाँट दिया। भक्तों ने उन वस्त्र-खण्डों को नित्यानन्द-प्रसाद मानकर अपने-अपने मस्तक पर धारण किया। सभी बड़े दु:खी होकर अपने-अपने घर लौटकर भूमि पर लेटकर रोदन करने लगे।

संध्या के समय भक्तवृन्द प्रभु के निकट पुनः पहुँचे, तो प्रभु ने उन्हें आलिंगन किया, भूमि पर लोटपोट किया। तत्पश्चात् अनन्तकीर्ति (गौर)

हरि आनन्दपूर्वक सिंहगति से नृत्य करने लगे। नृत्य-कीर्तन के बीच में ही प्रभु श्रीवास के हाथ पकड़कर दूर ले गये। उन्हें न देखकर हरिदास आदि भक्त बड़े विस्मित और विवश हुए। महान्त (भक्त महाजन) लोग उन्हें खोजने पर भी न पा सके। उन सबको क्षुब्ध जानकर प्रभु स्वयं ही लौट आये। सबने उत्सुक होकर उन्हें घेर लिया।

उस समय भक्तजनों का गोपीस्वभाव जाग्रत हुआ। वे परम भक्ति से भरकर प्रभु को वनमाली कृष्ण के रूप में देखकर प्रार्थना करने लगे-महेश्वर ऐसी कृपा करें कि ये ही हमारे वल्लभ हों!

**''गोपीस्वभावाप्तसमस्तभक्त्या पश्यंश्च कृष्णं वनमालिनं प्रभुम्।**
**मद्वल्लभोऽसौ भगवान् यथा भवेत् तथा कृपां मे कुरुतान्महेश्वरः।।''**

गोपांगना-भाव से विभावित यह रसमय कृष्ण (गौरहरि) अपने भक्तजनों का गोपीभाव जानकर वस्त्रहरण आदि लीलायें करने लगे। तत्पश्चात् वे जब भक्तवृन्द के साथ नृत्य-कीर्तन कर रहे थे, अवधूत नित्यानन्द आये और सबके साथ नृत्य-कीर्तन करने लगे। जैसे बच्चे कृष्ण-बलराम के साथ विहार करते थे, वैसे ही भक्तवृन्द गौर-नित्यानन्द के साथ आनन्द अनुभव करने लगे।

नृत्यान्त में प्रभु ने द्विजगण से कहा—''तुम लोग अवधूत का पाद-प्रक्षालन कर चरणोदक ग्रहण करो।'' वे सब चरणोदक-पान करते ही प्रेम से भरकर नृत्य-कीर्तन करने लगे—''**पीत्वा तु पादोदकमेव ते मुदा नृत्यन्ति गायन्ति रसेन पूर्णाः।**'' उधर अवधूत हँसते हुए भूमि पर गिर गये।

सुन्दर-सुवेश प्रभु का यह लीला-विलास देखकर और कीर्तन-गायन सुनकर आकाश में देवगण ने स्तव-स्तुति की।

**''तथा रमन्तं त्रिदशा विदित्वा नभोगता नेमुरमुं सुवेशम् ।**
**सुविस्मिताः कीर्तनकैस्तु पूर्णाः स्तुत्वामृतास्ते ददृशुः प्रहृष्टाः ।।''**

इसी समय मुनि हरिदास वक्ष पर स्फटिकमणि और चरणों में सुन्दर नूपुर धारण किये आये और प्रभु के निकट नाचने लगे। अद्वैत आचार्य भी आये। भक्तवत्सल प्रभु ने स्वयं पाद्य अर्घ्य गन्ध अक्षत चन्दन आदि से उनका स्वागत किया और भोजन कराया। जो इस हरिकथा को सुनेंगे, वे प्रेमपूर्ण होंगे, विशुद्ध भाव अखण्ड पांडित्य प्राप्त करेंगे और देहावसान

पर श्रीहरिधाम को गमन करेंगे।

**एकादश सर्ग :** वनमाली नामक एक भिक्षुक ब्राह्मण अपने लड़के के साथ आया और 'देवदेवेश' के दर्शन कर नृत्य करने लगा। एक अन्य दिन जब गौरहरि नृत्यकीर्तन कर रहे थे, पीताम्बर धारण किये एक श्यामवर्ण बालक को देखकर वनमाली 'मैंने प्रभु को देख लिया, देख लिया' कहकर अपना जन्म सार्थक मानने लगा। उसने प्रेमाश्रु वर्षण करते हुए चक्रपाणि प्रभु के साथ नृत्य किया। "**प्रेमाश्रुधारासिक्तांगो ननर्त सह चक्रिणा।**"

एक दिन जब श्रीवास पंडित पैतृक क्रिया सम्पन्न कर कृष्ण का वृहत् सहस्रनाम स्तोत्र श्रवण कर रहे थे, प्रभु आ निकले। श्रीहरिनाम सुनकर उन्हें नृसिंह आवेश हुआ और वे नृसिंहदेव का आकार और विक्रम प्रकट कर क्रोध से भरकर गदा लेकर दौड़ने लगे।

"**नृसिंहावेशसंक्रुद्धो गदामादाय सत्वरः ।**
**धावति स्म ततो देवो नृसिंहाकारविक्रमः ।।**"

प्रभु की उस मूर्ति को देखकर सब भयभीत होकर भागने लगे। भक्तवृन्द को भागते देखकर प्रभु ने गदा का परित्याग कर प्रकृतिस्थ होकर आसन पर बैठते हुए कहा—"मुझसे कोई अपराध हुआ क्या, कह नहीं सकता।"

यह सुनकर सबने कहा—"हे जगन्नाथ! आपका कोई अपराध नहीं। हे मानद! जिनके नृसिंहरूप के दर्शन-अनुस्मरण कर पापबीज तक दग्ध हो जाते हैं, उन (गौरहरि) का कोई अपराध नहीं हो सकता।" ". ...**यद्दर्शनमनुस्मरन् ।। पापबीजं दहेदेव नरसिंहाकृतेः प्रभोः। अपराधस्तव भवेत् कदाचिदपि मानद।।**"

एक दिन एक गायक आया। प्रभु को प्रणाम कर भूमि पर बैठकर सुमधुर स्वर में शिव-संगीत सुनाने लगा। गौरहरि शिव-आवेश में नृत्य करने लगे और सहसा एक ही छलांग में गायक के कंधे पर जा बैठे। तब श्रीवास पंडित ने शिवस्तोत्र पाठ किया। गौरहरि एक प्रकाण्ड वृषभ पर आरूढ़ होकर गोल-गोल आँखें घुमाने लगे। मस्तक पर जटायें प्रकट हुईं, शृंग और डमरू ध्वनि हुई, मुख पर रामनाम उच्चारित हुआ। सर्वदेवमय जगन्नाथ साक्षात् हर हो गये!

**"महोक्षे स हरिस्तत्र वर्तुलाम्बुजलोचनः ।।**
**जटिलः शृंगडमरुवादको रामगायकः ।**
**बभूव जगतां नाथः सर्वदेवमयो हरः ।।"**

उन्हीं श्रीमुकुन्द ने महिम्न स्तोत्र पाठ किया। तब प्रभु उस गायक के कंधे से उतरे और हरिलीलारस में डूबे भक्तवृन्द के साथ सानन्द नृत्य-कीर्तन करने लगे।

एक दिन नृत्य के पश्चात् प्रभु जब दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे, एक ब्राह्मणी ने आकर उनकी श्रीचरणरज ले ली। यह देखकर प्रभु परम दु:खी होकर नाना प्रकार से अनुताप करने लगे। इतना ही नहीं, वे त्वरित गति से चलकर सुरधुनी में जा कूदे। महाबली महाबाहु अवधूत उन्हें पकड़कर तीर पर लाये। श्रीवास हरिदास आदि ने उद्विग्न और भयभीत होकर उन्हें घेर लिया; शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी आदि तो प्रेमोत्कण्ठा से रोने लगे। प्रभु प्रकृतिस्थ हुए तो सबने हरिकथा आरम्भ की।

**द्वादश सर्ग :** तत्पश्चात् भक्तवृन्द प्रभु के साथ मुरारि के घर गये, फिर विजय के निवास पर। वहाँ रात बिताकर प्रभु द्रुत गति से गंगातट की ओर चलने लगे। साधु ब्राह्मणवृन्द ने विनीत भाव से कहा—"हे भगवन्! प्रसन्न होओ, अपने घर वापस चलो।" इस पर स्वभक्तहृदयानन्द श्रीमान् विश्वम्भर प्रभु घर आ गये। तब भक्तवृन्द शोक त्यागकर हृष्टचित्त हो गौरहरि के साथ श्रीवास के घर गये। वहाँ सबको सम्बोधित कर प्रभु ने कहा—"मैं माता का परित्याग कर अन्यत्र जाता हूँ, तो सब कहेंगे कि मैंने विरुद्धाचरण किया।"

यह सुनकर मुरारि बोले—"हे नाथ! कोई नहीं कहेगा। सनातन प्रभु के विषय में कुछ कहने की जीव की सामर्थ्य नहीं।"

यह सुनकर भगवान् ने मुरारि को आलिंगन कर लिया। वैद्य मुरारि ने पुलकित होकर एक प्राचीन श्लोक पढ़ा—

**"क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।**
**ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ।।"**

(कहाँ मैं पापी और दरिद्र; कहाँ श्रीनिकेतन श्रीकृष्ण! मैंने ब्राह्मणवंश में बस जन्म लिया है, इसीलिये उन्होंने मुझे भुजाओं में भर लिया!!)

श्लोक सुनते ही प्रभु में एक अद्भुत भाव प्रकट हुआ और वे

सहसा सूर्य की-सी कान्ति छिटकाते हुए बोले—तुम लोग इस देह को सच्चिदानन्दघन जानना। "**इदं देहं विजानीहि सच्चिद्घनमनुत्तमम्।**"

यह सुनकर सभी पुलकित-आनन्दित हुए और श्रीवास ने प्रभु को गंगाजल से स्नान करा विधिवत् पूजा की। महातेजस्वी नित्यानन्द ने छत्र धारण किया, गदाधर प्रभु को ताम्बूल खिलाने लगे, तो किसी ने चँवर झला। अन्यान्य भक्तजन बड़े विस्मय-कौतुक के साथ नृत्य-कीर्तन करने लगे।

**"नित्यानन्दो महातेजाश्छत्रं शिरस्यधारयत् ।।**
**गदाधरश्च ताम्बूलं ददाति श्रीमुखोपरि ।**
**केचित् सेवन्ते तं देवं चामरव्यजनादिभिः ।।"**

**त्रयोदश सर्ग** : एक दिन प्रभु भक्ति-शिक्षा देने के लिये झाड़ू हाथ में लिये ब्राह्मणवर्ग के साथ देवालय गये। प्रभु के कंधे पर कुदाली, कटिप्रदेश में धटी, सिर पर नये वस्त्र का पाग देखकर लगता था जैसे नवीन सूर्य ही अपनी कान्ति छिटका रहा है। आचार्य आदि महात्मागण भी कुदाली और सम्मार्जनी लिये श्रीकृष्ण के महतर बनकर देवालय के द्वार पर पहुँचे। सबने मिलकर भित्ति-मार्जन किया। श्रीमान् गौरचन्द्र ने स्वयं स्वतंत्र भगवान् जगत् के परम कारण होते हुए करुणापरवश होकर नाना प्रकार से शिक्षा दी।

**"....शिक्षां शतसहस्रः ।।**
**भगवान् स्वात्मतंत्रोऽपि कारुण्येनाभ्यशिक्षयत् ।**
**श्रीमान गौरचन्द्रदेवो जगतां कारणं परम् ।।"**

एक दिन प्रभु रास्ते पर जा रहे थे, तो एक कुष्ठरोगी नतमस्तक हो बोला—"सब तुम्हें सनातन पुरुष देवदेवेश कहते हैं। हे भगवन्! मुझ-जैसे पापी का उद्धार करो। हे नाथ! मुझे इस दुःसह विकट कुष्ठरोग से मुक्त करो।" यह सुनते ही प्रभु के कमलनयन लाल हो गये और वे क्रोध करते हुए बोले—"अरे दुराचार! वैष्णवद्वेष्टा! तू श्रीवास पंडित से द्वेष कर क्या सुख से रह सकेगा? तूने वैष्णवोत्तम श्रीवास से अवाच्य बोल बोले, तू शत-शत जन्मों तक कुष्ठरोगी विकलांग रहेगा। मैं वैष्णव से द्वेष रखने वाले का उद्धार कभी नहीं करता। वह तो अमेध्य (अशुचि) नरक को जाता है। हाँ, वैष्णवों के प्रति नत-प्रणत रहकर मुझसे द्वेष करे, उसका

मैं महापातकराशि से भी उद्धार कर देता हूँ।'' ऐसा कहकर प्रभु श्रीवास-भवन गये और श्रीवास से बोले–''रास्ते में एक कुष्ठरोगी देखा। वह दुष्ट तुम्हारे प्रति अपराध कर सभी प्रकार से नरकयंत्रणा भोग रहा है। उसका उद्धार दिखाई नहीं देता।''

श्रीवास बोले–''प्रभो! मेरे प्रति अपराध करने वाले का उद्धार करो–मैं यही वर माँगता हूँ। पापपूर्ण जगन्नाथ माधव (जगाइ-माधाइ) आदि का भी उद्धार करो।'' समस्त पातकों के मूल को नष्ट करने वाले उन भगवान् (गौरहरि) ने श्रीवास की बात मान ली।

एक दिन एक ब्राह्मण पुरुषोत्तम (गौरहरि) का संकीर्तन-नृत्य देखने गया, किन्तु द्वारपाल द्वारा रोक लिये जाने से भीतर न जा पाया। अगले दिन उस सुदुर्मुख ने सुरधुनी-तट पर प्रभु को देखकर क्रोध से भरकर अपना यज्ञोपवीत तोड़कर शाप दिया-तुम्हारे द्वारपाल ने मुझे भीतर नहीं जाने दिया; अब तुम शीघ्र ही संसार त्यागकर बाहर आओ।

ब्राह्मण की बात सुनकर प्रभु आनन्दित होकर सोचने लगे-इस क्रुद्ध ब्राह्मण का शाप ही मेरे लिये वर बन गया; मैं संन्यास लेकर जीवों का उद्धार करूँगा।

**''क्रुद्ध ब्राह्मणशापो वै वर एवाभवन्मम ।**
**उद्धरामि जनान् सर्वान् संन्यासाश्रममाश्रितः ।।''**

जो व्यक्ति इस शाप की कथा श्रद्धा से श्रवण करता है, वह ब्रह्मशाप से मुक्त होकर नवीन सुख प्राप्त करता है।

**चतुर्दश सर्ग :** एक दिन प्रातःकाल महाप्रभु गौरचन्द्र पाठाभ्यास कराते-कराते नीलाम्बर (बलदेव) के भाव में आविष्ट हो गये। बोले–''मधु दो।'' तभी उन्होंने मेघगम्भीर ध्वनि सुनी और नीलाम्बर कमलनयन बलराम को देखा। उस अद्भुत मूर्ति को देखकर आनिन्दत होकर अन्य सभी को आनन्द देने के लिये अखिलभुवननाथ गौरहरि नृत्य करने लगे। तत्पश्चात् वैद्य मुरारि के यहाँ पहुँचकर उदीयमान सूर्य की कान्ति से युक्त होकर बोले–''मधुपूर्ण उत्कट सुधा दो।''

यह कहकर प्रभु ने जल से भरा एक पात्र लेकर जल पिया और मत्त होकर नाचने लगे; हँसते-हँसते भूमि पर लोटपोट करने लगे। यह देखकर उपस्थित भक्तवृन्द ने बलराम स्वरूप का स्तव कर उनके चरणों

में दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु बोले—"अब मैं वह कृष्ण नहीं जो वचनों से ही सुखी होऊँ। मुझे उत्तम अद्‌भुत पेय दो।" तभी एक मल्ल ब्राह्मण को देखकर एक अंगुली से स्पर्श कर दूर फेंक दिया। वह भूमि पर जा गिरा और भयभीत हो गया। इस प्रकार प्रभु ने प्रातःकाल से सन्ध्या तक बलदेव लीला की।

अगले दिन भी प्रभु बलराम का स्मरण कर रह-रहकर मूर्छित हुए। भक्तवृन्द के जल-सिंचन से प्रकृतिस्थ होकर गद्‌गद् स्वर में गदाधर से बोले—"सभी बन्धुओं और साधु-वैष्णवों को लेकर आओ, देखने की बड़ी इच्छा है।"

आचार्यरत्न आदि आये। प्रभु को विह्वल देखकर सभी बड़े दुःखी होकर बोले—"हे तात! अपनी विह्वलता का कारण बताओ।" प्रभु ने कहा—"मैंने रजतगिरि के समान हलायुध (बलराम) को देखा है-हाथ में स्वर्ण हल, प्रभातकालीन सूर्य की दीप्ति, सर्वांग में स्वर्णाभूषण!"

**"....दृष्टो मया श्वेतगिरिर्हलायुधः ।।**
**सुवर्णसौनन्दकरः सहस्रगुर्यथा प्रभाते वरहेमभूषणः ।"**

यह सुनकर श्रीयुत चन्द्रशेखर आचार्य बोले—"हे प्रभो! तुमने जो देखा है, उसका वर्णन करो।" इस पर गौरहरि ने सहसा उसी स्थान पर जाकर बलराम को देखा और वे आनन्द के साथ बलदेव-वेश धारण कर नृत्य करने लगे। वैष्णववृन्द से घिरे प्रभु ने जगन्मंगल हरिसंकीर्तन-यज्ञ कर समय बिताया। दिनान्त में वे पुनः नृत्य करने लगे तो चारों ओर वारुणी की दिव्य गन्ध पाकर सब आनन्द से भर गये।

**"ततोऽपरान्हे पुनरेव देवे नृत्योन्मुखे वारुणिदिव्यगन्धैः ।।**
**अपूरि सर्वाणि दिशां मुखानि तदा समाघ्राय जना ननन्दुः ।"**

तभी श्रीराम नामक विप्र ने वहाँ बहुत-से दिव्य लोगों को उपस्थित देखा—एक कान में पद्मभूषण, एक ही कान में सुन्दर कुण्डल, कमलवत् विशाल आँखें, सिरों पर पाग। उसके मुँह से यह सब सुनकर उपस्थित भक्तवृन्द आनन्द से भर उठे।

और वहीं वनमाली नामक ब्राह्मण ने देखा कि भूमि पर एक स्वर्ण-निर्मित परम उज्ज्वल लांगल (हल) रखा हुआ है। उसे देखते ही वनमाली की देह अश्रु-पुलक से भर उठी।

त्रिजगत् के नाथ (गौरहरि) बलदेव के आवेश में पुनः नृत्य करने लगे, तो अवधूत नित्यानन्द ने उसी भावरस में मग्न होकर उन्हें वक्ष से लगा लिया। गगनविहारी देवगण परम तृप्त होकर प्रणाम करने लगे, अश्रु-पुलक से भरकर 'श्रीराम नारायण कृष्ण' उच्चारण करने लगे।

इस प्रकार श्रीकृष्णचैतन्य स्वयं हरि ने हलायुध-आवेश में विचित्र वेश में जगत् के हितार्थ अनेक लीलायें कीं। जो उन्हें सुनता है, वह सदा भक्तिरस में मत्त रहता है और देहान्त के पश्चात् श्रीहरिपादपद्म-सुधा प्राप्त करता है।

**पंचदश सर्ग :** गौरहरि ने गद्गद् स्वर में कहा—यज्ञवपु पृथ्वी-धारक वराह भगवान् ने मुझे आलिंगन किया है, हलायुध (बलदेव) ने मेरे हृदय में प्रवेश किया है और वेणुपाणि (कृष्ण) मेरे नेत्रांजन हुए हैं।

**"वराहदेवो भगवान् ददौ मामालिंगनं यज्ञवपुर्महीधरः ।।**
**हलायुधो मे हृदि सन्निविष्टः स वेणुपाणिर्नयनांजनोऽभूत।"**

प्रभु के ये वचन सुनकर उपस्थित भक्तजन आनन्द से नृत्य करने लगे। तब उन (गौर) कृष्ण ने हंसकर श्रीवास से कहा—"मेरी मुरली दो।"

श्रीवास बोले—"प्रभो! मुरली भीष्मनन्दिनी ने आपके घर में सुरक्षित रखी है। पर वह इस समय नहीं मिलेगी, कारण-रात के समय घर का द्वार बन्द है।" लोकगुरु गौरहरि ने हँसते-हँसते भक्तजनों के साथ रात बिता दी। मुरारि (श्रीगौरांग) के इस महालीलाविनोद की बातें सुनकर मनुष्य भवसागर पार करता है, और उसे पढ़कर उनके चरणकमलों में शीघ्र रति प्राप्त करता है, महारोगों से मुक्ति भी पाता है।

**"महाक्रीड़नकं मुरारेः श्रुत्वा विमुच्येत भवार्णवान्नरः ।**
**पठेल्लभेत्तत्पदपंकजे रतिं द्रुतं महारोगगणाद्विमुच्यते ।।"**

जिनके चरणकमलों में कमलाजी का प्रीतिसागर रह-रहकर उच्छलित होता, आज वे ही गोपीभाव-विभावित हो श्रीकृष्णपादपद्म आश्रय लेने लगे!

एक दिन चन्द्रानन प्रभु ने स्त्रियोचित सुन्दर वेश धारण कर अपने भक्तों के साथ आचार्य चन्द्रशेखर के घर नृत्य किया। श्रीपति के अग्रज द्विजवर श्रीवास ने देवर्षि नारद की भूमिका में भूमि पर लेटकर प्रभु को

दण्डवत् प्रणाम किया और गदाधर पंडित से कहा—"हे गोपिके! तुमने देवर्षि के चरणों में नतमस्तक होकर प्रार्थना की-आपके चरणकमलों की ऐसी करुणा हो कि मैं उत्तम रूप से करुणासागर श्रीकृष्ण के पादपद्मों की सेवा कर सकूँ। और मुनिवर ने कहा—हे अप्सरे! तुम शत-शत वर्ष तक माघ मास में गंगाजल में स्नान करो, तभी वह सेवा मिलेगी। तुमने मुनि-वचनों का यथायथ पालन किया है, फलस्वरूप तुम्हें गोकुल में जन्म मिला है। शुकदेवजी ने जिस अति उत्तम हरिभक्ति का बार-बार सानन्द गायन किया है—त्रिजगत् में दुर्लभ वही अति उज्ज्वल भक्ति तुम्हें प्राप्त हुई है।

**वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।**
**यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ।।**

(भा० 10/47/63)

मैं हरिभक्ति का माहात्म्य और क्या कहूँ? महापापी अजामिल ने पुत्र के नाम के बहाने उसी (नाम) सम्पत्ति के बल पर दुस्तर संसार-सागर पार कर लिया था। अतएव तुम सपरिकर कृपामय के धाम में जाओ। उन अज भगवान् की सेवा करने का क्या फल मिलता है, कहा नहीं जा सकता।"

श्रीवास के ये वचन सुनकर वहाँ उपस्थित भक्तवृन्द प्रेमसागर की रसतरंगों में डूब गये।

**षोड़श सर्ग :** इस (दृश्य) के पश्चात् हाथ में दण्ड लिये पूर्णचन्द्र के समान हरिदास (यवन) ने प्रवेश किया। त्रिभुवन के संतप्त जीवों को सम्बोधित करते हुए बोले—"तुम सब हरिकीर्तन करो।" यह सुनकर वैष्णववृन्द पुलकाश्रु कलेवर हो नृत्य-कीर्तन करने लगे।

अब आये सूर्यसदृश दीप्तिमान, वैष्णवराज, प्रसन्नानन, ईश्वरांश अद्वैत आचार्य। अपने अनुचरों के साथ कान्ति बिखेरते आये और हरिपादपद्मरसोन्मत्त सिंह की तरह नृत्य करने लगे। उन्हें देखकर सभी सभासद प्रेमरस में निमज्जित हो गये।

रसविशेष के आस्वादक बलदेव ने भी गोपीवेश में प्रवेश किया—प्राणनाथ का करकमल पकड़े, अश्रुधाराओं से अभिषिक्त!

तप्तकांचनवर्ण भगवान् गौरहरि भी प्रविष्ट हुए। स्वयं वासुदेव होते

हुए भी गोपिका के विशेष वेश में! लगा जैसे कनकपर्वत (सुमेरु) का श्रृंगराज ही जंगम (गतिशील) हो उठा है। उत्तम कंचुलिका से आच्छादित वक्ष; अरुण वस्त्र परिधान; शंख-कंगन आदि से सुशोभित करकमल; क्षीण कटिप्रदेश, पैरों में सुन्दर नूपुर! नृत्य करने लगे। नरहरि गौर-गोपिका की देहकान्ति से परिवेश झिलमिला उठा; मालतीमाल को कम्पित करता दिव्यगन्ध मलय पवन बहने लगा।

लक्ष्मीदेवी का भाव और कान्ति धारण कर प्रभु ने परम आनन्द के साथ नृत्य किया।

तत्पश्चात् प्रभु प्रेमभक्तिरसभरी कोटि जननियों के स्नेह से परिपूर्ण होकर विराजमान हुए। उनकी आज्ञा से विप्रगण उस जननीमूर्ति को सानन्द प्रणाम कर वेदवाक्यों से स्तव-स्तुति करने लगे। प्रभु सर्वशक्ति-समन्वित भगवतीभाव में आविष्ट हुए, तो भक्तवृन्द ने देवताओं का चण्डी-स्तवराज पाठ किया। प्रभु उस भगवती-आवेश में बोले—"मैं तुम लोगों का नृत्य देखने के लिये ही बड़े कौतूहल के साथ यहाँ आई हूँ।"

यह सुनकर सबने प्रार्थना की—"हे देवि! अपने चरण-कमलों में प्रेमभक्ति दो।" इस पर देवी (गौरहरि) हँसते हुए बोलीं—"यदि मेरे प्रति तुम लोगों की भक्ति होती है, तो लोग कहेंगे यह चाण्ड (शाक्त) है।"

यह सुनकर सबने भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया।

तत्पश्चात् देवीभावाविष्ट प्रभु ने सूर्यचन्द्र-सदृश हरिदास को अपनी गोद में बिठा लिया। आश्चर्य की बात यह कि हरिदास भी पाँच वर्ष के बालक की तरह उनकी गोद में बैठ गये। तब किसी ने कहा—"हे देवि! आप इन दीन मुरारि के प्रति दृष्टिपात करो।" यह सुनते ही उन सुवेशा भगवती ने नेत्रों से प्रेमाश्रुवर्षण किया, निजजनों की पूजा ग्रहण की और उन्हें स्तनपान कराया। फिर तुरन्त ही उनका ईश्वरभाव देखकर सबने अश्रुपूर्ण नेत्रों से जगदीश को प्रणाम-वन्दन किया।

इस प्रकार पूरी रात व्यतीत कर प्रभु अपने घर चले गये। उन्हें देखकर लोगों को लगा जैसे वे अपने हाथों में वरदण्ड धारण किये हैं। और किसी-किसी को वे प्रचण्ड सूर्य की रश्मि-जैसे लगे।

**"हस्तगृहीतवरदण्ड इवातिचण्डरश्मेः शिखेव नृपरिर्ददृशे जनेन।"**

**सप्तदश सर्ग :** आचार्यरत्न (श्रीचन्द्रशेखर) के घर जिस स्थान

पर प्रभु ने नृत्य किया, उस स्थान पर सप्ताहभर अद्भुत तेज बना रहा। चन्द्रकिरणों की तरह सुशीतल; चित्त को आनन्द और शुचिता देने वाला। वहाँ उपस्थित लोग कहने लगे—"हम भूमि की ओर देखें तब भी विद्युत-जैसे इस तेज के कारण आँखें नहीं खोल पा रहे।" ये सब महाभाग्यवान् लोग मन ही मन आनन्दित रहे और सारे मर्म को जानकर भी बहिर्मुख लोगों के आगे नीरव बने रहे।

श्रीवास ने जगद्गुरु भगवान् (गौरहरि) से पूछा—"प्रभो! आपने कलियुग में ही हरिनाम-कीर्तन की बात कही है। सत्य आदि युगों में क्या इसका फल कुछ न्यून होता है?"

प्रभु बोले—"सुनो! सत्ययुग में धर्म पूरी मात्रा में रहता है, इसलिये ध्यान से ही फल मिल जाता है। त्रेता में यज्ञ से और द्वापर में पूजा से वह फल मिल जाता है। किन्तु कलियुग में पाप का बाहुल्य रहता है, जीव यह सब नहीं कर सकते, अतः स्वयं प्रभु हरि नामरूप में प्रकट होकर सुशोभित होते हैं। अन्य तीन युगों में ध्यान यज्ञ अर्चना की शक्ति से कार्यसिद्धि हो जाती है, किन्तु दारुण पापमय कलि में प्रभु स्वयं ही आ गये हैं।"

**"कृतादिषु त्रयः शक्त्या ध्यानयज्ञार्चनादयः । दारुणे च कलौ पापे स्वयमेवानुपद्यते ।।"**

सुनकर श्रीवास पंडित परम प्रसन्न हुए; उन्होंने श्रीनाम को ही सर्वपुरुषार्थसार के रूप में ग्रहण किया।

एक दिन भगवान् (गौरहरि) ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहा—मैं घर में और नहीं रह पा रहा, मथुरापुरी जाऊँगा। यह कहकर श्रीकृष्ण-विरह में कातर होकर अपना यज्ञोपवीत तोड़ डाला। यह देखकर वैद्य मुरारि बोले—हे भगवन्! आप सर्वतत्वविद् हैं, सब कुछ करने में समर्थ हैं। आप गृह-वास करने या विरक्त-आश्रम स्वीकार करने में भी समर्थ हैं, किन्तु इस समय आप ऐसा नहीं कर सकते। हे नाथ! आप स्वतंत्रतावश संन्यास ग्रहण करेंगे, तो सब लोग स्वतंत्राचरण कर मलिन संसार में पतित होंगे। अब आप स्वयं विवेचना कर निर्णय लें।

**"भगवन् सकलं कर्तुं शक्तोऽसि सर्वतत्ववित् ।**
**गन्तुं स्थातुं त्वमार्येण तथापि नार्हसि ध्रुवम् ।।**

**त्वया चेत् क्रियते नाथ स्वातंत्र्यात् सकला जनाः ।**
**स्वातंत्र्येण करिष्यन्ति पतिष्यन्त्यशुचौ पुनः ।।''**

भक्तवृन्द-परिवेष्टित, गदाधर द्वारा गन्धमाल्य आदि द्वारा सेवित, भक्त-गति (गौर) हरि मुरारि की बात का कोई उत्तर न देकर प्रेमविह्वल होकर नित्यानन्द प्रभु के साथ कीर्तनानन्द में डूब गये।

**अष्टादश सर्ग** : कुछ दिन पश्चात् लीलापुरुष भगवान् बोले—''स्वप्न में देखा कि एक ब्राह्मणश्रेष्ठ हँसते-हँसते मेरे कान में संन्यास मंत्र दे गये। मैं तभी से व्यथित हूँ, हर समय रोदन कर रहा हूँ। प्राणनाथ प्रियतम हरि को त्यागकर अन्य कार्य करना तो उचित नहीं ? !''

मुरारि बोले—''उस मंत्र ('तत्त्वमसि' वाक्य) में षष्ठी तत्पुरुष समास मानकर सुख से रहिये।''

प्रभु ने कहा—''इससे भी खेद नहीं जाता। शब्दशक्ति का क्या करूँ ?'' यह कहकर वे रोने लगे।

जैसे व्रजरमणियाँ भावी कृष्णविरह की बात से विह्वल हो गई थीं, वैसे ही भक्तवृन्द भी गौरहरि के विछोह की बात सोचकर कातर हो उठे।

इसके कुछेक दिन पश्चात् महातेजस्वी संन्यासीश्रेष्ठ श्रीमत् केशव भारती सूर्य-सी आभा बिखेरते नवद्वीप आये।

पूर्वजन्मों के पुण्यों के फलस्वरूप उन्होंने स्वयं आकर तप्तकंचनवर्ण पुंडरीकाक्ष प्रेमविह्वल (गौर) हरि के दर्शन किये। प्रभु को देखते ही वे आनन्द से भर उठे। भगवान् गौरहरि ने उन्हें देखकर उठकर स्वागत प्रणाम किया। श्रीमत् केशव भारती परम सन्तुष्ट हुए और बोले—''मुझे लगता है, तुम निश्चय ही शुक या प्रह्लाद हो। अथवा तुम साक्षात् ईश्वर और सबके कारण हो।''

**''त्वं शुको वाथ प्रह्लाद इति मे निश्चिता मतिः ।**
**किंवा त्वं भगवान् साक्षादीश्वरः सर्वकारणः ।।''**

अपनी प्रशंसा सुनकर तो प्रभु व्यथित होकर और अधिक रोने लगे। प्रेमवारिधाराओं से सर्वांग भिगो लिया। यह देखकर संन्यासीवर विस्मित होकर बोले—आप ईश्वर कृष्ण ही हैं, और सन्देह नहीं। ''**भगवन्तं भवान् कृष्ण ईश्वरो नात संशयः।**''

समस्त जीवों को पवित्र करने वाले श्रीनिकेतन भगवान् ने अपना

समृद्धिशील गृह त्यागकर संन्यास लेने का निश्चय किया। उनका भाव देखकर मुकुन्द ने वैष्णववृन्द से कहा—"प्रभु जब तक हैं, आप सब इन जगत्योनि (जगत्कारण) के दर्शन कीजिये। जगद्गुरु कुछ ही दिनों में गृहत्याग कर चले जायेंगे।" बुद्धिमान मुकुन्द की बात सुनकर सभी बड़े व्यथित हुए।

प्रभु श्रीवास पंडित से बोले—"मैं तुम लोगों के प्रेम के कारण जाऊँगा। जैसे वणिक लोग नौका द्वारा देशान्तर जाते हैं और उपार्जित धन लाकर बन्धुओं को देते हैं, वैसे ही मैं भी देशान्तर से प्रेमराशि लाकर दूँगा, जिससे तुम लोग सर्वदेव-आराध्य श्रीकृष्ण के सम्यक् दर्शन कर सको।"

श्रीवास बोले—"प्रभु! तुम्हारे विरह में हम लोग जीवित कैसे रहेंगे?"

प्रभु ने उत्तर दिया—"तुम्हारे ठाकुरकक्ष में मैं नित्य रहूँगा, इसे कोई आश्चर्य न समझना।" यह सुनकर श्रीवास सोचने लगे—ईश्वर सर्वव्यापी हैं; किसके वश में हैं?

तत्पश्चात् संध्या समय प्रभु श्रीहरिदास को लेकर मुरारि के घर गये। मुरारि ने प्रभु के श्रीचरणों में प्रणत होकर उनके लिये आसन बिछाया। फिर हरिदास को प्रणाम कर उनके निकट बैठ गये। प्रभु ने मुरारि से कहा—"आज एक उपदेश दे रहा हूँ, उसका पूरी तरह पालन करो। ये अद्वैत आचार्य सद्गुणों के आश्रय और ईश्वर-अंश हैं। यत्नपूर्वक आदर के साथ इनकी सेवा करना। तुम्हारी सुख-समृद्धि के लिये ही मैं यह गूढ़ तत्त्व बता रहा हूँ।"

**"अद्वैताचार्यवर्योऽसौ महान् वै सद्गुणाश्रयः ।**
**ईश्वरांशोऽस्य सेवाञ्च कुरु यत्नेन सादरम् ।।**
**इत्येवं ज्ञापितो गुह्यो मया त्वत्सुखसिद्धये ।"**

और...एक दिन (श्रीगौर) कृष्ण ने कण्टकनगर (कटवा) जाकर ब्रह्मविद्यापारदर्शी श्रीमत् केशव भारती को गुरुरूप में स्वीकार कर कृतार्थ कर उनसे संन्यास-दीक्षा ग्रहण की। जो (गौर) हरि का चरित्र सुनते हैं, वे तुरन्त पापराशि से मुक्त होकर श्रीहरि के पादपद्म में अतुलनीय भक्ति प्राप्त करते हैं।।

## तृतीय प्रक्रम

**प्रथम सर्ग :** श्रीहरि का अद्‌भुत प्रपंचातीत चरित्र सुनकर दामोदर पंडित ने मुरारि से कहा—"अब प्रभु के संन्यास और विदेश गमन की बात बताओ। पुरुषोत्तम (जगन्नाथ) के दर्शन कर वे पुराणपुरुष कौन-कौन से तीर्थों में गये?"

वैद्य मुरारि बोले—"भगवान् मुझे अतुलनीय शक्ति दें, जिससे मैं कुशलतापूर्वक उनका चरित्र बता सकूँ। जिनकी अमृतोपम कथा कर्णरसायन है, जिनके नाम-स्मरण से विमुक्ति भी विवश हो जाती है, उन नित्यविग्रह, अज, हेमकान्ति अमल पुरुष चैतन्यदेव का मैं भजन करता हूँ। उनकी पगनखकान्ति से आलोकित शुद्धचित्त व्यक्ति शीघ्र ही ब्रह्मस्वभाव और भगवत्‌भजनामृत आदि तत्त्व समझ लेते हैं। मैं उन्हीं देवगण-परिवन्दितचरण महाप्रभु की स्तुति करता हूँ, जिनके पादपद्मों का मधु निरन्तर पान कर शंकर भगवान् भी अनुराग से भर गये हैं।"

**"यस्याद्‌भुतश्रुतिसुधारसनैः सुवाणी**
**यन्नामसंस्मृतिरसाद्विवशा विमुक्तिः ।।**
**तं नित्यविग्रहमजं वरहेमगौरं**
**चैतन्यदेवममलं पुरुषं भजामि ।**
**यत्पादपद्मनखरद्युतिरञ्जितेन**
**चित्तेन शुद्धमनसः सहसा विदुस्तत् ।।**
**ब्रह्मस्वभावभगवद् भजनामृतं च**
**तं देववृन्दपरिवन्दितपादमीड़े ।**
**यत्पादपद्ममकरन्दमजस्रं पीत्वा**
**श्रीशंकरोऽपि भगवाननुरागपूर्णः ।।"**

भगवान् (गौरहरि) रात्रि के अन्त में गृहत्याग कर सुरधुनी पार कर चले गये। यह जानकर भक्तवृन्द विकल-व्यथित सन्तप्त हुए। क्रन्दन करने लगे। सातवें दिन श्रीचन्द्रशेखर आचार्यरत्न (प्रभु की खोजखबर लेकर) लौटे। कमलनयन गौर का संवाद पूछे जाने पर वे बोले-सब बताता हूँ......

पथ पर जाते उन पुरुषप्रवर प्रभु की अंगकान्ति को दर्शकवृन्द अपने नेत्रचषकों से पान करने लगे। और जब पता चला कि प्रभु संन्यास

ग्रहण करने जा रहे हैं, तो लोग सानन्द उनके चरणकमलों में प्रणाम करने लगे। भगवान् मुकुन्द (गौरहरि) अश्रु-पुलक से भरकर नृत्य करने लगे। उस समय कण्टकपुरी (कटवा) में आबालवृद्धवनिता और दूसरों के हाथ पकड़े अन्धे बहरे कुबड़े अनेक लोग समागत हुए। कोई स्त्री बगल में कलसी लिये खड़ी है, तो कोई हाथ में पूजा-सामग्री लिये है, और किसी अन्तर्वत्नी (गर्भवती) का हाथ किसी वृद्धा ने पकड़ रखा है। वे सब सन्तप्त होकर जनार्दन (गौरहरि) की मुख-कमलसुधा पान कर रही हैं। तरुण सूर्य की किरणों से प्रकाशित स्वर्णपद्म की तरह प्रभु को देखकर स्त्रियाँ परम विस्मय के साथ परस्पर कहने लगीं—"अरे यह चन्द्रमुख अपूर्वदर्शन किसका पुत्र है! ये तो पृथ्वी के मंगल के लिये आविर्भूत हुए हैं। इनकी माँ ने बड़े-बड़े पुण्य कर इन्हें पाया है। इस मंगलमय कुमार ने अपनी कांति से कामदेव को और वाणी से वृहस्पति को पराजित कर दिया है। किस भाग्यवती ने कितने-कितने अनुष्ठान कर इसे पतिरूप में पाया है, फिर किस कर्मदोष से ऐसा विरह भोग रही है? इसकी माँ तो इसे देखे बिना प्राणहीन जीवन जीयेंगी।" कृष्ण के मथुरा चले जाने पर समस्त व्रजवासी आर्त हो गये थे, लगता है यहाँ भी वही अवस्था है।

कोई-कोई विदुषी महिला तो स्पष्ट कहने लगी—गोपीभावविभावित स्वयं नन्दनन्दन कृष्ण ही आविर्भूत होकर अब संन्यासी बनकर अपना कार्य करेंगे।

"**काश्चिद्विदग्धाः स्फुटमेव चाहु-**
**र्गोपाङ्गनाभावर्विभावितोऽसौ ।**
**श्रीनन्दपुत्रः स्वयमाविरासीत्**
**संन्यासवेशेन स्वकार्यसाधकः ।।**"

ऐसी नाना प्रकार की उक्तियाँ व्यक्त हुईं। विश्वम्भर का मुखकमल पान कर उपस्थित जनसमुदाय स्वयं को भी भूल गया।

**द्वितीय सर्ग :** नृत्य के अन्त में वे भगवान् हरिप्रेम में अधीर होकर रोदन करने लगे। उनकी वह अवस्था देखकर जनसमुदाय भी प्रेमाश्रु विसर्जित कर रोने लगा। प्रभु ने गद्गद् स्वर में कहा—हे माताओ! पिताओ! ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि मुझे हरि-स्मृति हो। "**मां तात मातश्च विधेहि साम्प्रतं शुभाशिषो येन हरिस्मृतिः स्यात्।**"

यह सुनकर सब लज्जित और भक्तिरसपूर्ण होकर रोने लगे। अपने दर्शनामृत से उन सबको सान्त्वना देकर भगवान् गौरचन्द्र वैष्णववृन्द के साथ गुरु श्रीकेशव भारती के निवास पर चले गये। श्रीगुरुचरणों में प्रणत होकर करुणासागर गौरहरि मंगलमय नाम श्रीराम नारायण आदि गाते-गाते प्रेम में अधीर हो गये। अपराह्न में आचार्यरत्न ने श्रीकृष्णपूजा आदि कार्य विधिवत् सम्पन्न किये। गुरु के हितार्थी प्रभु ने भारती महाशय के कान में कहा—"मैंने स्वप्न में एक मंत्र प्राप्त किया है, उसे सुनिये और बताइये, वह आपका सम्मत है कि नहीं।" यह कहकर उन्होंने वह मंत्र तीन बार पढ़ा। सुनकर भारतीजी बोले—"अहो! यही श्रीहरि का परम पवित्र संन्यास मंत्र है।"

इस प्रकार लोकनाथ अव्यय आत्मा गुरु गौरहरि ने छल से भारतीजी को दीक्षा देकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की—हे गुरुदेव! अब मुझे संन्यास दीजिये। तब सूर्य के कुम्भ राशि में संक्रमण करने पर (माघ संक्रान्ति को) भारती महाशय ने विधान के अनुसार गौरहरि को संन्यासमंत्र प्रदान किया।

रोमांचित देहयष्टि प्रेमाश्रुसिक्तवक्ष प्रभु गद्गद् स्वर में बोले—"मेरा संन्यास हो गया!" कहते ही वे चलने लगे, तो भारतीजी ने त्वरित गति से दण्ड और अरुण वस्त्र देते हुए कहा—"अरे! अरे! इन्हें धारण करो।" और 'गुरुभक्तिलम्पट' प्रभु ने वे वस्तुएँ ले लीं। गुरुदेव के निर्देश से प्रभु ने वह दिन वहाँ बिताया और रात को उनके साथ नृत्य-कीर्तन किया। जगद्गुरु के गुरु भारती महाशय ने श्रीकृष्ण (गौरहरि) के साथ आनन्द-पूर्वक नृत्य कर ब्रह्मसुख को भी तुच्छ अनुभव किया।

**"ननर्त तस्मिन् जगतां गुरोर्गुरुः कृष्णेन सार्द्धं महता सुखेन ।**
**आनन्दपूर्णस्तु पुनः स मेने ब्राह्मं सुखं तुच्छतरं महात्मा ।।"**

नृत्य के अन्त में भारती महाशय प्रभु से बोले—"किसी ने मेरे हाथ से दण्ड खींचकर मुझे आलिंगन कर कहा कि नृत्य करो; और मैंने आनन्दविह्वल होकर नृत्य किया।" सुनकर प्रभु निजजनों से परिवेष्टित होकर नृत्य करने लगे। भारती महाशय भी दण्ड-कमण्डलु दूर फेंककर प्रेमपूर्वक संन्यास धर्म की पवित्रता के लिये प्रभु के साथ नाचने लगे। जो स्वयं भगवान् के इस संन्यास प्रकरण की कथा सुनेंगे, वे मुक्ति प्राप्त

करेंगे (उन्हें अपने स्वरूप की उपलब्धि होगी) और उनकी मनोवासनायें पूरी होंगी।

**तृतीय सर्ग :** 'महाभुज माधव' (गौरहरि) गुरुदेव की आज्ञा लेकर राढ़देश (बंगाल का पश्चिमी भाग) में भ्रमण करने लगे। चलते-चलते अवधूत नित्यानन्द के साथ कृष्णकथा कहते हैं, नृत्य करते हैं और 'स्वभक्तिभावित' होकर गायन करते हैं। आत्मविग्रह श्रीकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करते हैं। प्रेमाश्रुधाराओं से श्रीअंग इस प्रकार अभिषिक्त हो जाता है जैसे निर्झर धारा से गिरिश्रृंग! देह कभी अश्रु-सिंचित होती है, तो कभी कम्प-पुलक से भर उठती है। वे कभी विह्वल-स्खलित होते हैं, कभी द्रुतगति से चलने लगते हैं, और कभी मत्त गजराज की तरह चलते हैं। बीच-बीच में प्रभु के श्रीअंग का तेज बढ़ जाता है। वे सादर कृष्ण गोविन्द गाने लगते हैं।

**''विप्लुताक्षः क्वचित् कम्पपुलकाञ्चितविग्रहः ।**
**विह्वलः स्खलितः क्वापि क्वचिद् द्रुतगतिर्व्रजन् ।।**
**मत्तकरीन्द्रवत् क्वापि तेजसा ववृधे क्वचित् ।**
**क्वचिद् गायति गोविन्द कृष्ण कृष्णेति सादरम् ।।''**

राढ़देश में हरिनाम सुनने को न मिला, तो प्रभु दु:खी होकर कहने लगे—''मैं जल में प्रवेश कर देह त्याग दूँगा। यह ब्राह्मणों का देश है, यहाँ हरिनाम क्यों नहीं सुन रहा।'' यह कहकर वे जलाशय के निकट जा पहुँचे। वहाँ कुछ बच्चे गोचारण कर रहे थे। अवधूत नित्यानन्द के सिखाने पर एक बालक बड़े आनन्द से उच्च स्वर से 'हरि बोल' कहने लगा। नाम सुनकर प्रभु को बड़ा हर्ष हुआ। वे देहत्याग का संकल्प छोड़कर आर्त स्वर में विलाप करने लगे और विह्वल होकर भूमि पर गिर पड़े। अवधूत नित्यानन्द से वृन्दावन-वार्ता सुनकर उन्हें सान्त्वना मिली।

श्रीनिकेतन प्रभु ने मुझ (श्री चन्द्रशेखर आचार्यरत्न) से कहा—''तुम नवद्वीप जाओ। भक्तों को मेरा 'नमो नारायण' कहना। मुझे आनन्द होगा।''

श्रीहरि की बात सुनकर मैं गौरगतप्राण परम आर्त हुआ उनकी परम अद्‌भुत चेष्टायें लक्ष्य करता-हँसना, रोना, नाम गायन, गमन, भूमि पर पतन और शयन आदि। स्वतंत्र आत्माराम प्रभु निजजन को शिक्षा देने के

लिये कभी गोपीभाव, कभी भक्तभाव, और कभी ईश्वरभाव प्रकट करते।

**''गोपीभावैर्दासभावैरीशभावैः क्वचित् क्वचित् ।**
**आत्मतंत्रः स्वात्मरतः शिक्षयन् स्वजनानयम् ।।''**

(संन्यास के पश्चात्) तीन दिन तक उन्हें बाह्यज्ञान न रहा। मैं भीत व्याकुल होकर सोचने लगा, क्या करूँ? बहरहाल, प्रभु को बाह्यज्ञान हुआ और मैं उन संन्यासी-चूड़ामणि की आज्ञा लेकर यहाँ (नवद्वीप) चला आया। श्री (गौर) कृष्ण परसों (अद्वैत) आचार्य के यहाँ आयेंगे, वहाँ आप सब उन्हें निश्चय ही देख पायेंगे।

**चतुर्थ सर्ग :** गौरहरि के सब वृत्तान्त सुनकर अद्वैत आचार्य आदि उपस्थित वैष्णवगण अधीर और परम दुःखी होकर आर्त स्वर से रोने लगे। उधर राढ़देशवासियों के नेत्रों को आनन्द देकर प्रभु अवधूत नित्यानन्द से बोले—तुम नवद्वीप जाओ; मेरी ओर से परम भक्तिपूर्वक श्रीकृष्ण चरित आदि सुनाकर माँ को सान्त्वना देना और श्रीवास आदि मेरे प्रिय वैष्णवों को आचार्य के घर ले आना। मैं वहाँ पहुँच रहा हूँ।

नित्यानन्द प्रभु ने नवद्वीप में श्रीवासभवन पहुँच कर प्रभु का आदेश बताया। तत्पश्चात् वे श्रीवास आदि के साथ शचीमाँ के पास गये। उनके चरणों में प्रणाम कर दयानिधि नित्यानन्द ने माँ को सान्त्वना दी। माँ ने रसोई तैयार की तो उन्होंने प्रसाद पाया और उस दिन वहाँ रुककर अगले दिन सबको लेकर अद्वैताचार्य के यहाँ प्रस्थान किया।

पुत्र को पुरुषोत्तम मानकर शचीमाँ भी गईं। उस दिन उन सबने शिव-अंश महात्मा अद्वैत के निवास पर प्रसाद पाया। अगले दिन प्रभु फुलिया होते वहाँ पहुँचे, तो सबने अश्रुकम्प-पुलकयुक्त होकर उस मंगल महोत्सव का आनन्द लिया।

एक तो तप्तकांचन वर्ण, ऊपर से अरुण वस्त्र और हाथ में संन्यासी का दंड! प्रभु को देखकर लगा जैसे गैरिक (गेरु) युक्त सुमेरु श्रृंग अपनी कान्ति का विस्तार कर रहा है। देखते ही भक्त वैष्णव उन्हें अपने प्राणवत् मानकर दण्डवत् प्रणाम कर आनन्दित हुए। भक्तवृन्द के नेत्रों से झरझर आँसू बहने लगे, कण्ठ गद्गद् हो गये, देह पुलक से भर उठीं। मृदुमधुर हास्यमंडित कृपानिधि प्रभु ने अपने हास्य से, स्पर्श से, वाणी से और

दृढ़ता से हाथ पकड़-पकड़ कर सबको पूर्णमनोरथ किया।

देवताओं से घिरे सुरेश्वर की तरह भगवान गौरहरि भी भक्तजन-परिवेष्टित हो अद्वैत आचार्य के यहाँ सहसा ही पहुँचे।

बदरिकाश्रम में ऋषियों के मध्य नारायण की तरह प्रभु सुशोभित हुए। शचीमाँ को प्रणाम कर करुणामय प्रभु ने सादर कहा—"माँ, मैं सदा तुम्हारे निकट रहूँगा।"

प्रभु ने भक्तवृन्द के साथ प्रसाद पाया। रात्रि के अन्तिम प्रहर में जगकर भक्तों के साथ मधुर स्वर में नृत्य-कीर्तन किया। श्रीवास आदि से बोले—"मैं देवदेवेश पुरुषोत्तम (जगन्नाथ देव) के दर्शन करने जाऊँगा; सार्वभौम नामक विप्रवर के साथ उन हरि के दर्शन करूँगा। तुम सब यहाँ मात्सर्यशून्य होकर सदा हरिकीर्तन, विशेषत: हरिवासर (एकादशी) को जागरण-कीर्तन करना।"

इस प्रकार भक्तवृन्द को विदा कर, अद्वैत आचार्य को आलिंगन कर प्रेमाश्रुओं से भरकर प्रभु ने यात्रा की। तभी दाँतों में तृण दबाये श्रीहरिदास ने जगत्पति (गौरहरि) के श्रीचरणों में दण्डवत् गिरकर प्रणाम किया। उन्हें देखकर दु:खी और अश्रुसिक्त होकर प्रभु बोले—"मैं भी जगन्नाथ-पादपद्मों में इस प्रकार गिरकर निवेदन करूँगा। तुम पर श्रीहरि की कृपा निश्चय ही होगी।" अद्वैत आचार्य बोले—'हे नाथ! तुम्हारे गमन की बात सुनकर भी मुझे प्रेम क्यों नहीं होता? तुम्हारी यह कैसी कृपा है?" प्रभु ने उत्तर दिया—'यदि इस समय आपको प्रेम होता, तो मेरा जाना सम्भव न होता।' यह कहकर उन्हें दृढ़ आलिंगन कर प्रभु गदाधर आदि के साथ चलने लगे, तो गोपीनाथ आचार्य बोले—"हे भगवन्! हे कामद! मैं आपका श्रीअंग देखना चाहता हूँ।" यह सुनकर प्रभु ने अपनी चादर हटा दी। बादलों के छँट जाने पर जैसे मेरुश्रृंग चन्द्रकिरणों से चमक उठता है, वैसे ही प्रभु की अनावृत देहलता भी गलित स्वर्ण की तरह प्रतिभात हुई।

श्रीहरि की यह कीर्ति और पुरुषोत्तम-यात्रा सुनने से मनुष्य गौरपादपद्मों में प्रेम प्राप्त करता है और यह प्रसंग पाठ करने से वह सब लाभ होता है, जो पुरुषोत्तम देव के दर्शन से होता है।

**पंचम सर्ग :** प्रभु ने मुकुन्द गदाधर आदि के साथ यात्रा की। वे

नित्यानन्द को आगे कर पीछे-पीछे चलने लगे। मार्ग में कभी कृष्ण-कथा, कभी अस्पष्ट वाक्योच्चार। कभी द्रुत गति, कभी धीर गति, और कभी प्रेम में धैर्यहीन होकर स्खलन। संध्या के समय यदि कुछ उपलब्ध होता, तो प्रभु प्रसाद पा लेते। रात में अधीर होकर गाते और रोते। वे एक श्लोक पढ़ते। उसे सुनने से उनके श्रीचरणकमलों में रति होती है—

**"राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम् ।**
**कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव त्राहि माम् ।।"**

तत्वज्ञशिरोमणि, लोकपालक, अव्यय प्रभु लोकशिक्षा के लिये इस पद का मधुर कण्ठ से गायन करते और हँसते।

इन याचक पथिकों को देखकर एक दानी अपनी क्लान्ति भूल गया (आनन्दित हुआ और कर लिये बिना जाने दिया।) एक अन्य दानी ने निजजन-परिवेष्टित जगद्गुरु (गौरहरि) को दान के लिये रोका, तो उन्होंने हाथ के संकेत से कहा—"तुम दूर रहो।" वह भी चला गया। प्रभु भी आनन्दित हो आगे बढ़ गये।

नित्यानन्दप्रभु को अपना दण्ड पकड़ा कर जगद्गुरु आगे-आगे चलने लगे। अवधूत धीरे-धीरे उनके पीछे। उदारमति नित्यानन्द दु:खी होकर सोचने लगे—ये शंखचक्रगदापद्मधारी श्रीनिकेतन हरि लोकशिक्षा के लिये संन्यासी बनकर दण्ड धारण कर रहे हैं। पहले इन्हीं ने विश्व-विमोहन रूप से वंशी बजाई, राधा के साथ रसविलास किया।

**"असौ श्रीभगवान् साक्षाद्दृश्यते प्रज्वलन्नलम् ।**
**शंखचक्रगदापद्मधरो देवः श्रियान्वितः ।।**
**लौकिकीं दर्शयंश्चेष्टां न्यासदण्डधरौ हरिः ।**
**मुरलीवादनः पूर्वं जगन्मोहनरूपकः ।।**
**राधारसविलासी.....।"**

कुछ समय पश्चात् प्रभु ने अपना दण्ड वापस माँगा, तो अवधूत डरते-डरते बोले—पैर फिसल जाने से मैं गिर पड़ा और दण्ड टूट गया। वह सुनकर प्रभु क्रोध करते हुए बोले—मेरे दण्ड में शिव आदि देवगण अपनी शक्तियों के साथ विद्यमान हैं। तुमने उन्हें पीड़ा पहुँचाकर दण्ड-भंग कर दिया। देवपीड़ा कितना गुरुतर दोष है, तुम यह भी नहीं जानते?

**"दण्डे मे संस्थिता देवाः शिवाद्याः सह शक्तयः ।।**

**तेषां पीड़ां विधाय त्वं बभञ्ज मम दण्डकम् ।**
**देवपीड़ाकृतं दोषं नो जानासि किमल्पकम् ।।"**

यह सुनकर नित्यानन्द बोले—"मैंने तो उन सबका हित ही किया है (उन्हें बद्धावस्था से मुक्त कर!)"

बहरहाल, प्रभु ने कहा—"मैंने निश्चय किया था कि श्रीजगन्नाथ दर्शन कर कुछेक मास वहाँ रहकर दण्ड त्याग करूँगा, तुमने पहले ही तोड़ फेंका, मैं क्या करूँ?" फिर मधुर स्वर में बोले—"तुम सदा मेरा अभिप्रेत कार्य ही करना।"

**षष्ठ सर्ग** : प्रभु अपने मार्ग के निकटवर्ती देवगण को विधिवत् प्रणाम, स्तव करते हुए जाने लगे। पुण्यक्षेत्र तमोलिप्त (तमोलुक) में ब्रह्मकुण्ड-स्नान कर मधुसूदन के दर्शन किये। कुछ दिनों में महापुरी रेमुना पहुँचकर गोपालदेव के दर्शन किये। पहले यह हरिविग्रह उद्धवजी द्वारा वाराणसी में स्थापित और पूजित थे; किसी ब्राह्मण पर अनुग्रह करने के लिये रेमुना पहुँच गये। कोई-कोई इन्हें 'गोपीनाथ' कहते हैं। इन्होंने भक्त के लिये खीर-चोरी आदि लीलायें भी की हैं। हरि भक्तवाक्यानुगत हैं, यह बात यहाँ प्रमाणित होती है। भगवान् (गौरहरि) ने प्राकृतजन की तरह दर्शन किये; भूमि पर दण्डवत् लेटकर सुरेश (गोपीनाथ) को प्रणाम किया। करुणार्द्र चन्द्रवदन कमलनयन प्रभु निजजन के साथ नृत्य-कीर्तन करने लगे। और तभी...गोपीनाथ के श्रीविग्रह का मुकुट प्रभु के सामने आ गिरा। यह देखकर शचीसुत गौर ने उसे अपने करकमलों में ले लिया।

**"तत्क्षणान्मुररिपोः प्रतिमाया मौलिलग्नमुकुटं च समाप ।**
**तदवलोक्य करपद्मयुगेन तद्दधार श्रीशचीसुत एषः ।।"**

प्रभु ने प्रसादरूप में प्राप्त उस मुकुट को सानन्द मस्तक पर रखा।

वहाँ रात्रियापन कर पद्मवदन कम्बुकण्ठ प्रभु बहुत-से स्थानों को पार करते यथासमय वैतरणी नदी-तट पहुँचे। इसके दर्शन से लोगों के सभी पाप नष्ट होते हैं, फिर स्नान करने की तो बात ही क्या! प्रभु ने वैतरणी में स्नान कर महाशूकर मूर्ति वराह भगवान् के दर्शन किये।

प्रभु याजपुर पहुँचे। इस स्थान पर ब्रह्माजी ने यज्ञ किया था। यहाँ मृत्यु होने पर पापी भी शिवरूप प्राप्त करता है। यहाँ शत-शत शिवलिंग दर्शन कर प्रभु ने नतमस्तक होकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् प्रभु ने

विरजादेवी के दर्शन किये। इनके दर्शन से कोटि-कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं। यहाँ अतुलनीय प्रेमभक्ति की प्रार्थना कर प्रभु पितृतीर्थ नाभिगया पहुँचे। प्रभु ने ब्रह्मकुण्ड में स्नान किया। यहाँ यज्ञवराह मूर्ति के दर्शन कर सब सुखी होते हैं। प्रभु यहाँ घूम-घूम कर भूतेश्वर दर्शन करने लगे। वाराणसी की तरह यहाँ त्रिलोचन इत्यादि कोटि-कोटि शिवलिंग हैं। श्री (गौर) हरि की इन पापनाशन पुण्य कथाओं का श्रवण कर मनुष्य अनन्त सुख प्राप्त करता है; समस्त तीर्थ-पर्यटन और पितृतीर्थों में यज्ञ आदि का फल पाता है। अशेष गुणों से युक्त होता है।

**सप्तम सर्ग :** मुकुन्द दत्त ईश्वर (गौर हरि) को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रफुल्लित वदन से बोले—"हे भगवन्! यहाँ (नाभिगया में) कर लेने वाले दानी का किंचित भी भय नहीं। यहाँ के सभी दुर्दान्त लोगों को मैं जानता हूँ।"

यह सुनकर मन्दस्मितयुक्त प्रभु ने कहा—अब तक जो भय था, उससे तो तुमने ही हम सबकी रक्षा की है। ऐसा कहकर लक्ष्मीकान्त संन्यासी गौरकृष्ण लोक-शिक्षा के लिये भिक्षा करने चल पड़े।

सर्वशक्तिसम्पन्न नित्यानन्द अवधूत, श्रीमद् गदाधर, मुकुन्द आदि भी भिक्षा के लिये निकले। स्थानीय दानी क्रुद्ध होकर मुकुन्द को बाँधकर ले गया। दिनभर रखा और संध्या के समय एक कम्बल लेकर मुक्त किया। सभी बड़े खिन्न। महाप्रभु भिक्षा कर लौटे, तो उन्हें दानियों की करतूत बताई।

सुनकर प्रभु ने कहा—"अच्छा, ठहरो, भला होगा।' और शीघ्र ही अपनी शक्ति दानियों के राजा के निकट प्रेषित की। उसी क्षण दानीश ने आकर प्रभु के श्रीचरणों में प्रणाम-वन्दन किया। मुकुन्द आदि ने उसे सब बताया। वह बोला—"दण्डवाट (दानघाटी) में रहने वाले उन सब दुष्टों की ऐसी खबर लूँगा कि वे पुनः यह न करें।"

दानीश अपने भृत्यों की करतूत पर बड़ा दुःखी हुआ। एक बहुमूल्य नया कम्बल देकर प्रभु को प्रणाम कर वह अपने सुख-सुविधाओं से युक्त आवास पर चला गया। अब वह सब कुछ त्यागकर शुद्ध मन से श्री (गौर) हरि के पादपद्मों का चिन्तन करने लगा।

**"सर्वं त्यक्त्वा हरेः पादं चिन्तयामास शुद्धधीः ।"**

इस प्रकार उन सबका अहंकार नष्ट कर प्रभु ने रात्रि में सुखशयन किया। सुबह जल्दी उठकर लोकपावनी विरजादेवी के दर्शनार्थ चल पड़े। विरजादेवी, जिनके दर्शन कर मनुष्य भवबन्धन से मुक्त होता है– "**सर्वलोकैकपावनीम्। यां दृष्ट्वा श्रद्धया भक्त्या मुच्यते भव-बन्धनात्।।**" मनुष्य भगवत् दर्शन से जो फल प्राप्त करता है, वही पाता है विरजा-मुखदर्शन से।

इस अंचल में साक्षात् त्रिलोचन भगवान् (शिव) विराजते हैं। काशी या विरजा में मृत्यु होने पर मोक्ष प्राप्त होता है। वाराणसी में देह त्यागने वाले पर महादेव प्रसन्न होते हैं; पर उससे भी अधिक प्रसन्न होते हैं तब जब कोई विरजाक्षेत्र में शरीर छोड़ता है। ऐसी विरजादेवी के दर्शन कर सर्वलोकपावन (गौर) कृष्ण ने भक्तवृन्द के साथ कृष्ण-संकीर्तन कर यात्रा की।

**अष्टम सर्ग :** अब प्रभु एकाम्रक्षेत्र पहुँचे जहाँ समस्त लोकपालों के साथ गिरिजा और महादेव विराजते हैं। यह शिवालय तोरण, चंचल पताका और शूलयुक्त विचित्र चूड़े से सुशोभित है। लगा जैसे यह मन्दिर पताका के रूप में सुरधुनी की विविध भंगिमाओं के साथ उन्नत मस्तक होकर खड़ा है। प्रभु ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

"**निपत्य भूमौ प्रणनाम देवः शिवालयं शूलविचित्रचूड़म् ।**
**पताकया नाकनदीविभंगं दधत् समारोहति हेलयेव ।।**"

प्रभु त्रिपुरारि की पुरी (भुवनेश्वर) गये, जहाँ विश्वेश्वर आदि कोटि शिवलिंग और मणिकर्णिका आदि बहुत-से पुण्यतीर्थ विराजते हैं। यहाँ देह त्यागने पर मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त करता है। उसी मुक्ति को योगीजन उग्र तपस्या कर चार युगों के पश्चात् प्राप्त करते हैं। महादेव ने सभी तीर्थों से बूँद-बूँद जल लाकर यहाँ महा बिन्दुसरोवर नामक कुण्ड का निर्माण किया है। उसमें स्नान करने पर विशुद्ध पद प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, यहाँ वास करने की इच्छा हुई तो महादेव ने समस्त पुण्य तीर्थों का आह्वान कर उन्हें यहाँ स्थापित भी किया। वे कृत्तिवास महादेव लिंगरूप में ईश्वरी गिरिजा के साथ यहाँ विराजते हैं; यतीन्द्रजनों द्वारा सदा ही पूजित हैं।

परमेश्वर हरि ने अपने भृत्य परिकरों को लेकर उक्त मन्दिर में

प्रवेश किया। चन्द्रवत् धवल पुरारि-मन्दिर! प्रभु ने कृत्तिवास (महादेव) को दण्डवत् प्रणाम कर गद्‌गद् स्वर में स्तुति की—हे त्रिदशेश्वर! भूतादिनाथ! हे मृड़ (शिव)! मैं तुम्हें नित्य प्रणाम करता हूँ। तुमने गंगा-तरंगों से उत्थित बाल चन्द्रमा को अपने चूड़े में धारण किया है। तुम गौरी के नयनानन्द हो। तुम्हारे चरणों में नमस्कार है। जो तप्त कंचन, चन्द्र, नीलकमल, प्रवाल और मेघश्यामल वस्त्र आदि धारण कर सुन्दर नृत्य-भंगिमा के साथ भक्तों को वर प्रदान करते हैं, उन कैवल्यनाथ, वृषभध्वज शिव को प्रणाम। जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि—जैसे तीन नेत्रों से जगत् का समस्त अंधकार नष्ट करते हैं, जो सहस्र चन्द्रमाओं और सहस्र सूर्यों को पराजित करने वाले तेज को धारण करते हैं, उन शिव के चरणों में नमस्कार। जो अनन्त नाग के रत्न से दीप्त हैं, व्याघ्रचर्म धारण कर दिव्य ज्योति छिटका रहे हैं, कमल पर विराजमान हैं, भुजाओं में अति उत्तम अंगद (बाजूबन्द) धारण किये हैं, उन शिव को नमस्कार। नूपुर-रंजित पादपद्मों की सुधा से भृत्यों (भक्तजनों) को सुख प्रदान करने वाले, विचित्र रत्नमाला से सुशोभित, हे शिव! मुझे श्रीहरि में प्रेम दीजिये। श्रीराम, गोविन्द, श्रीकृष्ण, नारायण, वासुदेव इत्यादि नामामृतपान में मत्त भृंगराज! समस्त दु:खों के अपहर्ता! तुम्हें नमस्कार है। श्रीनारद आदि महर्षि तुमसे सदा ही परम गोपनीय तत्त्व पूछते रहते हैं, तुम आशु वर प्रदान करते हो, उन्हें हरिभक्ति और आनन्द देते हो। हे सर्वगुरु शिव! तुम्हें नमस्कार है। तुम गौरी के नेत्रों के आनन्ददाता, प्राणनाथ और रसप्रद हो। सदा सानन्द गोविन्द-लीला-गायन में प्रवीण हो। तुम्हें नमस्कार है।

**श्रीशिवाष्टक**

**''नमो नमस्ते त्रिदशेश्वराय भूतादिनाथाय मृड़ाय नित्यम् ।**
**गंगातरंगोत्थितबालचन्द्र - चूड़ाय गौरीनयनोत्सवाय ।।**
**सुतप्तचामीकरचन्द्रनील पद्मप्रवालाम्बदकान्तिवस्त्रैः ।**
**सुनृत्यरंगेष्टवरप्रदाय कैवल्यनाथाय वृषध्वजाय ।।**
**सुधांशुसूर्याग्निविलोचनेन तमोभिदे ते जगतः शिवाय ।**
**सहस्र शुभ्रांशुसहस्ररश्मि-सहस्रसंजित्त्वरतेजसेऽस्तु ।।**
**नागेशरत्नोज्ज्वलविग्रहाय शार्दूलचर्मांशुकदिव्यतेजसे ।**
**सहस्रपत्रोपरि संस्थिताय वरांगदामुक्तभुजद्वयाय ।।**

**सुनूपुरारंजितपादपद्म - क्षरतसुधाभृत्यसुखप्रदाय ।**
**विचित्ररत्नौघविभूषिताय प्रमाणमेवाद्य हरौ विधेहि ।।**
**श्रीराम गोविन्द मुकुन्द शौरे कृष्ण नारायण वासुदेव ।**
**इत्यादिनामामृतपानमत्त भृंगाधिपायाखिलदु:खहन्त्रे ।।**
**श्रीनारदाद्यैः सतत सुगोप्य - जिज्ञासितायाशु वरप्रदाय ।**
**तेभ्यो हरेर्भक्तिसुखप्रदाय शिवाय सर्वगुरवे नमो नमः ।।**
**श्रीगौरीनेत्रोत्सवमंगलाय तत्प्राणनाथाय रसप्रदाय ।**
**सदा समुत्कण्ठगोविन्दलीला-गानप्रवीणाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।।"**

श्रीशिव-स्तव-परायण प्रभु को शिवभक्तों ने सुगन्धी माला-चन्दन आदि से विभूषित किया। तत्पश्चात् प्रभु ने प्रसाद पाकर आनन्द से सोकर रात बिताई। सुबह उठकर श्रीकृष्णलीला-गायन करने लगे। जो व्यक्ति कमलनयन गौरहरि के इस पुरारि-स्तव का पाठ करता है, वह मुनि-देवताओं को सुदुर्लभ प्रेम प्राप्त करता है।

**नवम सर्ग :** बिन्दुसरोवर-स्नान और श्रीभुवनेश्वर-दर्शन कर भगवान् सोचने लगे—यदि देवादिदेव भुवनेश्वर का प्रसाद मिलता, तो हम लोग भोजन करते। सोचा ही था कि एक ब्राह्मण दोनों हाथों में महादेव का प्रसाद लिये सामने आ खड़ा हुआ। बोला—"यह महादेव का प्रसाद है, ग्रहण कीजिये।" सुनते ही प्रभु ने उठकर प्रसाद को प्रणाम किया। साथियों के साथ गौरहरि ने उस प्रसाद का सुधावत् सेवन कर शिक्षा दी कि श्रीकृष्ण शिव-प्रिय हैं। "**शिवप्रियो हि श्रीकृष्ण इति सन्दर्शयन् हरि:।**"

प्रभु ने श्रीशिव-निर्माल्य ग्रहण किया, यह सुनकर परम तेजस्वी दामोदर पंडित ने कहा—"भृगुजी के शाप के कारण महादेव का प्रसाद तो ग्रहण करने योग्य नहीं होता, इस शास्त्र-वचन को जानते हुए भी नरोत्तम भगवान् ने उसे ग्रहण किया!?"

गुप्तजी बोले—"वस्तुत: श्रीकृष्ण (गौरहरि) के शुभागमन पर महादेव ने आनन्दपूर्वक उनका अतिथि-सत्कार किया। दूसरी बात, जो लोग महेश्वर को वैष्णवश्रेष्ठ मानकर उनकी पूजा करते हैं, महेश्वर उस पूजा (भोग) को ग्रहण करते हैं और वह अन्न परम पावन होता है। कृष्ण और कृष्णभक्त एक हैं, इन दोनों में भेदबुद्धि रखने से मनुष्य का अध:

पतन होता है–भक्तरूप स्वयं हरि ने दुष्टों को यही शिक्षा दी। देवेश जगदीश्वर (महाप्रभु) ने महादेव का प्रसाद ग्रहण कर अपने आचरण द्वारा प्रमाणित किया कि प्रतिष्ठित शिवलिंग की पूजा भेदबुद्धि से करने पर भृगुजी का शाप लागू होता है। (जो यह मानता है कि कृष्ण और शिव में भेद है, उसी के लिये यह बात है कि शिव-निर्माल्य अग्राह्य है) जो हरि-हर को एक मानता है, उसे यह दोष नहीं लगता। स्वयम्भू शिवलिंग को भी हरि से अभिन्न मानकर पूजने में भृगुजी का शाप नहीं लगता, हरि-हर दोनों की प्रसन्नता प्राप्त होती है। यहाँ अन्न महाप्रसाद खाने से मोक्ष प्राप्त होता है, महाव्याधि दूर होती है और स्थिर सम्पत्ति मिलती है। जो लोग मोहवश महादेव का प्रसाद ग्रहण नहीं करते, वही हरि-हर के प्रति अपराधी, रोगी और निःस्व (दरिद्र) होते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के उद्देश्य से वैष्णव द्वारा अनादि शिवलिंग का सादर पूजन हो, वहाँ शिव-निर्माल्य ग्रहण करने में कोई दुविधा नहीं होनी चाहिये। हे विप्र (दामोदर पंडित)! भक्ति से ही मानव का कल्याण होता है। **भक्तिरेव सदा विप्र शुभदा सर्वदेहिनाम।**"

**दशम सर्ग :** चैतन्यदेव की अभिनव मनोहर अमृतवर्षी कथायें और भी हैं, सुनिये। साधुओं के बन्धु अज भगवान् ने अपने साथियों के साथ आनन्दपूर्वक कपोतेश्वर शिवलिंग का दर्शन-वन्दन कर पुनः नीलाचल-यात्रा आरम्भ की। मार्ग में अन्यान्य शिवलिंगों के दर्शन करते, प्रणाम करते गये। भार्गवी नदी में स्नान कर आगे बढ़े। यथासमय नीलगिरि के भूषणस्वरूप श्रीजगन्नाथ-मंदिर के दर्शन हुए। शरच्चन्द्र से अधिक कान्ति। चक्र और चंचल पताका से सुशोभित शिखर। अपनी कान्ति से रह-रहकर कैलाशश्रृंग का तिरस्कार करता। पवन-परिचालित पताकारूपी हाथ के संकेत से कमलनयन गौरहरि का आह्वान करता!! यह सब देखते ही अरिहन्ता प्रभु स्पन्दनहीन होकर भूमि पर गिर पड़े। उनकी वह अवस्था देखकर साथी जड़वत् हो गये। शीघ्र ही प्रभु उठे, तो वे सब सानन्द उन्हें घेर खड़े हो गये। प्रभु ने स्वाभाविक रूप से उपस्थित लोगों से कहा–मन्दिर के ऊपर महानीलमणि की-सी कान्तिवाले उस बालक को देखो! वह देखो, पताका के निकट उस बालक की मुखकान्ति से कोटि-कोटि पूर्णचन्द्र भी तिरस्कृत हो रहे हैं। अपनी लालकमल-सी

दायीं हथेली की लाल-लाल चंचल अँगुलियों से मुझे बुला रहा है! बायें हाथ की अँगुलियाँ वेणुरन्ध्रों पर रखे कैसी शोभा पा रहा है! सहस्र चन्द्रों की कान्ति छिटकाता यह कौन है; अपने सुन्दर हास्य से मेरा मन मोह रहा है? इस प्रकार उत्कण्ठित गलितस्वर्णकान्ति प्रभु निजजनों के साथ बड़े वेग से चलने लगे। जगन्नाथजी के उस प्रासाद को देखकर प्रभु की अश्रुधारायें बहने लगीं। देखकर लगा, मानो सुमेरुश्रृंग ही निर्झर प्रवाहित कर रहा है। प्रभु मार्कण्डेय सरोवर पहुँचे। इस परम उज्ज्वल तटवाले कुण्ड का निर्माण उग्रचक्री विष्णु ने अपने चक्र से महेश के लिये किया है। मनुष्य इस तीर्थ में स्नान कर शिवलोक प्राप्त करते हैं। प्रभु ने उक्त सरोवर में स्नान कर शंकरजी की मूर्ति देखकर अघोर (शिव)-नाम जपते हुए दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् प्रभु महामन्दिर गये। प्रभु का श्रीअंग रोमांचित और वक्षस्थल अश्रुधाराओं से सिंचित था। उन्होंने प्रेम और परमात्म-चिन्तन से युक्त होकर श्रीजगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश कर जगत्पति के दर्शन कर दण्डवत् प्रणाम किया।

क्षणभर पश्चात् वे जगन्नाथ का मुष्टिकर रूप में (हाथ हिलाकर संकेत करते स्वरूप का) ध्यान करते हुए विह्वल होकर रोदन करने लगे।

**"पपात भूमौ पुनरेव दण्डवन्नमन्मुहुः प्रेमभराकुलाननः ।**
**ततः क्षणान्मुष्टिकरं विभावयज्जगत्पतिं सोऽतिरुरोद विह्वलः ।।"**

चैतन्यदेव की यह अवस्था देखकर पुरुषोत्तम जगन्नाथजी ने कमल-सुकोमल हाथ फैलाकर उसकी लालिमा प्रदर्शित की तो प्रभु हँसते हुए बोले—हे करुणासागर! हे महेश-वन्दित देवेश! प्रसन्न होओ। पर तभी जगन्नाथजी का वह करकमल अदृश्य हो गया तो वे और अधिक रोने लगे। तुरन्त ही वे करपल्लवांगुलियाँ पुनः दीखीं, तो प्रभु की देहलता प्रेमाश्रुधाराओं से सिञ्चित हो गई। जो लोग जगन्नाथजी और गौरसुन्दर की इन उद्दाम प्रेमचेष्टाओं की कथा का श्रवण-गायन करेंगे, वे मुरारि का परमधाम प्राप्त करेंगे और वहाँ से कभी पतन न होगा।

**एकादश सर्ग :** महाप्रभु के जगन्नाथ-दर्शन की बात सुनकर दामोदर पंडित ने प्रश्न किया—"भगवान् ने पुरुषोत्तमदेव (श्रीजगन्नाथ) के दर्शन किस प्रकार किये? किसकी सहायता से? और जनार्दन (श्रीजगन्नाथ) ने क्या किया?" इसके उत्तर में वैद्य मुरारि ने कहा—सुनिये!

प्रभु पहले वासुदेव सार्वभौम के यहाँ गये, तो उन्होंने प्रभु को दण्डवत् प्रणाम किया। प्रभु ने गद्गद् स्वर में कहा— मैं सनातन देवेश जगन्नाथ के दर्शन किस प्रकार कर सकता हूँ, आप बताइये? यह सुनकर सार्वभौम महाशय ने विस्फारित नेत्रों से प्रभु की ओर देखा— पूर्णिमा के चन्द्र की तरह मुख, पद्म-से नेत्र, सुन्दर नासिका! शंख-सा कण्ठ, विशाल वक्ष, बन्धूक-कोरक से भी अधिक सुन्दर मनोहर रक्तवर्ण ओष्ठ, कुन्दाभ दंतपंक्ति, ज्योत्स्ना को भी पराजित करता मृदु हास्य!! आजानुलम्बित भुजायें और कूर्मपृष्ठवत् उन्नत चरण! सुतप्त स्वर्णवर्ण दूसरे सुमेरुश्रृंग-से उस कृष्णप्रेमोज्ज्वल पुलकमंडित श्रीविग्रह को देखकर सार्वभौम विस्मित हो उठे।

**''सुतप्तकाञ्चनाभासं मेरुश्रृंगमिवापरम् ।**
**राकासुधाकराकारमुखं जलजलोचनम् ।।**
**सुनसं कम्बुकण्ठाढ्यं महोरस्कं महाभुजम् ।**
**बन्धूकमुकुरारक्तदन्तच्छदमनोहरम् ।।**
**कुन्दाभदन्तमत्यन्तचन्द्ररश्मिजितस्मितम् ।**
**आजानुलम्बितभुजं विलसत्पादपंकजम् ।।**
**कृष्णप्रेमोज्ज्वलं शश्वत् पुलकाञ्चितविग्रहम् ।**
**कूर्मोन्नतपदद्वन्द्वं दृष्ट्वादौ विस्मितोऽभवत् ।।''**

श्रीमन्महाप्रभु को देखकर विस्मित होकर सार्वभौम सोचने लगे— महापुरुष के लक्षणों से युक्त ये नरसिंह क्या वैकुण्ठ से देवरूप में अवतीर्ण हुए हैं? ये क्या सच्चिदानन्द मूर्तिमन्त रस हैं? अथवा समस्त जीवों के हितकर्ता स्वयं ईश्वर हैं?

**''किमसौ पुरुषव्याघ्रो महापुरुषलक्षणः ।**
**अवतीर्ण इवाभाति वैकुण्ठाद्देवरूपधृक् ।।**
**किंवासौ सच्चिदानन्दरूपवान् रसमूर्तिमान् ।**
**किंवासौ सर्वजीवानां हितकृदीश्वरः स्वयम् ।।''**

बहरहाल, सार्वभौम महाशय ने अपने पुत्र से कहा— तुम तुरन्त महात्मा चैतन्य के साथ मन्दिर जाओ और ऐसी व्यवस्था करो कि ये अनायास पुरुषोत्तम देव के दर्शन कर सकें। तब सार्वभौम-तनय के साथ जाकर प्रभु ने पुण्डरीकाक्ष जगन्नाथ के दर्शन किये। दर्शन करते ही वे

विह्वल उल्लसित हो उठे, प्रेमाश्रुधाराओं से मुख-वक्ष सिक्त हो गये, श्रीअंग में महाकम्प आरम्भ हो गया। मानो वायु-वेग से सुमेरु का श्रृंग टूट पड़ा हो, इस प्रकार प्रभु धराशायी हो गये। भगवान् गौरहरि की मुठ्ठियाँ बँध गईं, वस्त्र आदि अस्तव्यस्त हो गये। उनकी ऐसी अवस्था देखकर मंदिर के ब्राह्मण उन्हें सार्वभौम निवास ले गये। वहाँ संज्ञालाभ कर प्रभु पुलकित देह से पुनः नृत्य-कीर्तन करने लगे।

स्वर्ण-से गौरवर्ण उन पुरुषाधिराज ने अपने परिकरों के साथ जगन्नाथ देव का महाप्रसाद ग्रहण किया— भवरोगियों के लिये परम रसायन और देवेन्द्र को भी दुर्लभ! यह दूर से लाया गया हो, चांडाल द्वारा स्पर्श किया गया हो, तब भी इसे प्रीतिपूर्वक खाना चाहिये, अन्यथा शूकर योनि प्राप्त होती है।

**द्वादश सर्ग :** प्रभु ने जगन्नाथदेव की धूप आरति के दर्शन किये। धूप-दीप-सेवित, माल्यविभूषित स्निग्धश्यामलांग जगन्नाथ के श्रीअंग से सहस्रों पूर्णचन्द्रों की तरह दीप्तिमाला छिटकी। प्रभु दण्डवत् प्रणाम कर विस्फारित नेत्रों से उनकी रूपसुधा का पान करने लगे।

सुमेरुश्रृंग की तरह गौरअंग संन्यासीचूड़ामणि प्रभु द्विजराजरूप से सुशोभित हुए। आनन्द-सिन्धु में निमज्जित; आँसुओं से वक्ष भिगोते; रोमांच से परिपूर्ण! पुष्पांजलि तक रुक कर, जगन्नाथदेव को पुनः प्रणाम कर निवास-स्थान पर लौट आये।

प्रभु ने कुछेक दिन वहाँ रहकर लोगों को तरह-तरह से शिक्षा दी। एक दिन सार्वभौम महाशय ने उनमें मनुष्य-बुद्धि रखकर अपने लोगों से कुछ बातें कहीं। दरअसल, भट्टाचार्य के उस मोह को भी प्रभु की परम कृपा समझना होगा, कारण-हरि की प्रत्येक लीला में जगत् का हित छिपा होता है। भट्टाचार्यजी ने कहा—

**"अयं महावंशसमुद्भवः पुमान् सुपण्डितः प्रौढ़वयाः कथं चरेत् ।**
**संन्यासधर्मं तदमुं द्विजं पुनः कृत्वात्मवेदान्तमशिक्षयामहे ।।"**

(ये उच्च वंश में जन्मे हैं, परम पंडित हैं, तरुण हैं; संन्यास धर्म का आचरण कैसे करेंगे ? मैं इन्हें ब्राह्मण बनाकर वेदान्त की शिक्षा दूँगा)

भट्टाचार्य महाशय की बात जानकर प्रभु ने हँसते हुए कहा—मेरा पुनः यज्ञोपवीत होगा! तब तो मैं इस ब्राह्मण (सार्वभौम) को पुष्प, पूग

(सुपारी), माल्य आदि अर्पित करूँगा। किसी ने यह बात सार्वभौम महाशय से जा कही। वे भय के मारे बोले कुछ नहीं, किन्तु बड़े ही लज्जित- संकुचित हो गये। एक दिन अपराह्न में प्रभु ने ब्राह्मणों की उपस्थिति में सार्वभौम महाशय के आगे निगूढ़ वेदान्त वाक्यों की व्याख्या द्वारा यह प्रतिपादित किया कि श्रीहरिपादपद्मों का आश्रय ग्रहण करना ही वेदान्त का प्रकृत सिद्धान्त है। व्याख्या सुनकर सार्वभौम महाशय विस्मयोत्फुल्ल मन से श्रीचैतन्य-चरणों में गिर पड़े—"**चैतन्यपादाब्जयुगे महात्मा स विस्मयोत्फुल्लमनाः पपात।**" कहने लगे—प्रभो! मैं आपकी माया से मोहित हूँ; पृथ्वी पर आपके चरणकमलों का आविर्भाव हुआ, मैं नहीं जान पाया। आपने वसुदेव के घर अवतीर्ण होकर कंस आदि महा असुरों का विनाश कर स्वधाम गमन किया। अब पुनः ब्राह्मण के यहाँ आविर्भूत हुए हैं। आप स्वजनों को अपने माधुर्य, विलास, वैभव का आस्वादन करा जगत् के सुख और कल्याण के लिये अवतरित हुए हैं। हे करुणासागर! मुझ दीन की रक्षा कीजिये। जिन अद्वितीय पुराणपुरुषोत्तम ने वैराग्य, विद्या और अपने भक्तियोग की शिक्षा देने के लिये श्रीकृष्णचैतन्य -स्वरूप से कृपा अवतरण किया है, मैं उन्हीं कृपानिधि के चरणों में आश्रय लेता हूँ। कालप्रभाव से नष्ट हुए अपने भक्तियोग के पुनः प्रवर्तन के लिये जो कृष्णचैतन्य नाम धारण कर आविर्भूत हुए हैं, मेरा मनोभृंग उन्हीं के पादपद्मों में प्रगाढ़रूप से लीन हो।

**"सम्मोहितात्मा तव मायया प्रभो लोके पदाब्जञ्च तवाहमुग्रतः।।**<br>
**पुरा पृथिव्यां वसुदेवगेहेऽवतीर्य कंसादिमहासुराणाम् ।**<br>
**कृत्वा वधं त्वं प्रतिपाद्य धामं भूदेवगेहे पुनराविरासीत् ।।**<br>
**स्वकीयमाधुर्यविलासवैभव मास्वादयंस्त्वं स्वजनं सुखाय च ।**<br>
**कृतावतारो जगतः शिवाय मां पाहि दीनं करुणामृताब्धे ।।**<br>
**वैराग्यविद्यानिजभक्तियोगशिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः ।**<br>
**श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये ।।**<br>
**कालान्नष्टं भक्तियोगं निजं यः प्रादुष्कर्तुं कृष्णचैतन्यनामा ।**<br>
**आविर्भूतस्तस्य पादारविन्दे गाढ़ं गाढ़ं लीयतां चित्तभृंगः ।।"**

भक्तवश्य श्रीपति गौरहरि ने तुरन्त ही बड़े स्नेह से स्तव-स्तुतिरत भट्टाचार्य महाशय के हाथ पकड़ कर अपने वक्ष पर रख लिये और उन्हें

अपनी विशाल भुजाओं में भर लिया।

**त्रयोदश सर्ग :** कुछ दिन वैष्णववृन्द के साथ नृत्य-गीत आदि करते हुए प्रभु ने वैष्णवाचार्य काशीनाथ मिश्र से परामर्श कर तीर्थों को पवित्र करने की इच्छा से यात्रा की बात सोची। जगन्नाथ देव के दर्शन कर, उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर प्रेम-भक्ति से भरकर अश्रु-वर्षण करते हुए गद्गद् स्वर में बोले—हे देव! तुम्हारे क्षेत्र में वास करने का अधिकार मुझे नहीं है, इसलिये अन्यत्र ज़ाने की इच्छा हुई है। तुम्हारा चन्द्र-सा वदन, शारदीय पद्मतुल्य नयन, बड़े-बड़े बिम्बफल-से ओष्ठ, विशाल वक्षस्थल-यह सब देखकर भला किसका मन अन्यत्र जायेगा!? किन्तु हे हरे! लगता है, मुझ पर तुम्हारी वैसी कृपा नहीं है। जनार्दन! मैं आपके अन्यान्य क्षेत्रों के दर्शनार्थ जा रहा हूँ, ऐसी कृपा करो कि मैं तीर्थाटन कर सकूँ। जब तक चित्त चंचल रहता है, और निर्मल नहीं होता, तभी तक आदमी तीर्थों में भ्रमण करता है। चित्त सुनिर्मल हो जाय, तो स्थिरबुद्धि पुरुष पुरुषोत्तमक्षेत्र में वास करे। उसी प्रकार जैसे पथिक बहुत भ्रमण कर अपने भवन में वास करता है।

प्रभु यह सब कह रहे थे कि जगन्नाथजी का कण्ठ-हार उनके पादपीठ पर खिसक कर जा गिरा। सेवक ने वह आज्ञा-माला आनन्द के साथ चैतन्यदेव को धारण करा दी। शचीसुत गौरहरि ने प्रेमार्द्रचक्षु होकर काशी मिश्रालय जाकर काशीनाथ से कहा—आप सब पुरुषोत्तमदेव का दर्शन करें। मैं जगन्नाथ की कृपा से वंचित होकर तीर्थाटन के लिये जाता हूँ। यह सुनकर काशी मिश्र दु:खी होकर प्रभु के चरणों में दण्डवत् गिर पड़े और रोने लगे। प्रलाप करने लगे—हाय, मुझे पुत्र-शोक क्यों न हुआ? मुझे महाव्याधि क्यों न हुई? मैं इस प्रकार हठात् श्रीचैतन्यपादपद्मों से अलग क्यों हो गया?

**"कथं नाभूत पुत्रशोको महारुग्नोऽभवन्न किम् ।**
**चैतन्यचरणाम्भोजविश्लेषोऽयं कथं मम ।।"**

काशीनाथ इस प्रकार शोकार्त होकर भूमि पर लोटपोट करने लगे, तो प्रभु ने लौटकर आने की बात बार-बार कही और उन्हें सान्त्वना दी। तत्पश्चात् जगद्गुरु प्रभु ने वासुदेव सार्वभौम के घर जाकर यात्रा की अनुमति माँगी। वे भी रोते हुए प्रभु के श्रीचरण पकड़कर कहने लगे—हे

महाभुज! मेरे मस्तक पर वज्रपात क्यों न हुआ? आपकी श्रीचरण-छाया के बिना मैं प्राणरक्षा कैसे करूँगा? हे प्रभो! मुझे साथ लेकर जहाँ चाहें चलिये।

**''कथं नाभूद्वज्रपातः शिरसि मे महाभुज ।।**
**त्वत्पादरहितं प्राणं कथं धास्याम्यहं प्रभो ।''**

भट्टाचार्य की बात सुनकर प्रभु ने हँसकर हाथ पकड़कर कहा—''मैं शीघ्र ही वापस आऊँगा' और प्रेम से आलिंगन कर शान्त किया।

**चतुर्दश सर्ग :** श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ने दक्षिण-यात्रा आरम्भ की। आलालनाथ-दर्शन कर वे प्रेम-विभोर हो गये। उच्च स्वर से 'कृष्ण कृष्ण कृष्ण' कीर्तन करते हुए वे कभी भूमि पर लोटते, कभी मूर्च्छित होते, और कभी प्रलाप करते।

**''कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति उवाचोच्चैर्मुहुर्मुहुः ।**
**क्षणं विलुठते भूमौ क्षणं मूर्छति जल्पति ।।''**

मार्ग में किसी को देखते, तो आलिंगन कर उसमें शक्ति संचार कर देते। परिणाम यह होता कि वह नाचता-गाता अपने घर पहुँचता और प्रेमाश्रुवर्षण करता गाँव के अन्यान्य लोगों को आलिंगन कर बैठता। तब वे सब भी प्रेमाविष्ट होकर गाने लगते। प्रभु ने इस प्रकार लोकपरम्परा से सबको नामप्रेम में मत्त किया।

रात में आलालनाथ रुककर अगले दिन प्रभु आगे बढ़े। अपनी दक्षिण-यात्रा में प्रभु ने यह नामकीर्तन किया था—

**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे ।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण रक्षमाम् ।**
**कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण कृष्ण पाहि माम् ।**

प्रभु प्रेमाश्रुधाराओं से अभिषिक्त हुए उक्त मंत्र-पाठ करते पृथ्वी पर लोटते हैं, दौड़ते हैं, बड़े जोर से कम्पित होते हैं, 'ये रहे न हरि!' कहते हुए रुद्धकण्ठ हो रोकर तरुलताओं की ओर प्रेम से देखते हैं।

कूर्मक्षेत्र में प्रभु ने कूर्मरूपी जगन्नाथ के दर्शन किये। कूर्म नामक एक ब्राह्मण प्रभु को देखकर बड़ा आनन्दोन्मत्त हुआ; उसने बड़ी श्रद्धा से प्रभु को भोजन कराया। प्रभु ने एक कुष्ठरोगी को आलिंगन कर उसे

स्वर्ण की-सी कान्ति प्रदान की। वासुदेव नाम का यह विप्र तो पुरुषोत्तम (प्रभु) को कृष्ण समझकर आनन्द में नृत्य करने लगा। प्रभु ने इन दोनों से कहा—"मेरी आज्ञा से सबको कृष्णभक्ति ग्रहण कराओ।"

'कृष्ण कृष्ण' गाते लोगों को आश्चर्यचकित करते प्रभु आगे गये। जियड़नृसिंहदेव के दर्शन कर प्रेमाश्रुधाराओं और पुलकावलि से युक्त हो गये। प्रभु ने भगवान् की भक्तपराधीनता की प्राचीन कथा सुनाई। इस स्थान पर पुण्डया नामक एक किसान मायाम्बु फल की खेती करता था। यह देखकर कि एक वराह उसकी फसल को चौपट कर देता है, उस बलशाली पुण्यात्मा कृषक ने वराह ये युद्ध किया। उसके वाणों से बिंधकर वराह 'राम राम' कीर्तन करने लगा, तो पुण्डया उस वराह को ईश्वर मानकर अपने अपराध के लिये क्षमाप्रार्थी होकर उपवास करने लगा। एक दिन भगवान् ने कहा—दुग्धसेचन करने से मेरे दर्शन पाओगे; तुम्हारा राजा भी दर्शन पायेगा। पुण्डया के कहने पर राजा ने भगवत् आज्ञा का पालन किया। भगवान् ने उन दोनों को अपने स्वरूप के दर्शन कराये। कुछ समय पश्चात् एक वणिक अपनी पत्नियों के साथ वहाँ दर्शनार्थ आया। यह देखकर कि उसकी दोनों पत्नियाँ प्रभु के श्रीचरणकमलों को प्राप्त हो गईं वह बड़ा तुष्ट-हृष्ट हुआ। तब भगवान् ने उस साधुपुरुष से वर माँगने को कहा। वह बोला—हे जगदीश्वर! मेरा नाम जियड़ है, आप यह नाम ग्रहण कीजिये। "**जियड़ेति हि मे नाम गृहाण जगदीश्वर।**" तब से भगवान् जियड़नृसिंह नाम से प्रसिद्ध हैं। यह आख्यान सुनाकर साक्षात् हरि श्रीगौरांग महाप्रभु वहीं अन्तर्धान हो गये। भला उनका साक्षात्कार कौन कर सकता है?!

**"एतदाख्यन् हरिः साक्षात् श्रीगौरांगो महाप्रभुः ।**
**अन्तर्दधे हि तत्रैव केन दृष्टः किल स्वयम् ।।"**

**पंचदश सर्ग :** अगले दिन सुबह कीर्तन करते हुए जगद्गुरु प्रभु अधीर हो उठे और श्रीरामानन्द राय के दर्शन करने काञ्चीनगर पहुँचे। श्रीराय अपने पूजाकक्ष में व्रजेन्द्रनन्दन का ध्यान करने लगे। तीन बार ऐसा किया, पर प्रत्येक बार परम अद्भुत गौरांग-माधुरी देखकर महा विस्मित हुए—"**ददर्शवारत्रयमद्भुतं महद्गौरांगमाधुर्यमतीव विस्मितः।**" आँखें खोलीं तो उसी परब्रह्म संन्यासी स्वरूप को देखकर

सिर झुकाकर हाथ जोड़कर पूछा–"प्रभो! आप कहाँ से पधारे हैं?"

प्रभु ने हँसते हुए कहा–'हे राधिका-पादपद्म-मधुकर! तुम अपने स्वरूप का ध्यान क्यों नहीं करते?" कहकर गौरहरि ने उन्हें आलिंगन कर लिया। रसिकेन्द्रचूड़ामणि प्रभु ने उनके आगे अद्‌भुत वृन्दावन केलि-रहस्य उद्‌घाटित कर और शीघ्र नीलाचल आने की आज्ञा देकर, सान्त्वना देकर पुनः यात्रा आरम्भ की।

श्रीराम, गोविन्द, कृष्ण आदि नामों का कीर्तन करते प्रभु ने गोदावरी पार कर पंचवटी महावन में प्रवेश किया। श्रीसीता-राम का स्मरण कर बड़े विह्वल हुए। फिर दसों दिशायें प्रकाशित करते प्रभु कावेरी की उस पार पहुँचे। श्रीरंगनाथ दर्शन कर सानन्द नृत्य करने लगे। वहाँ एक विप्र गीता का अशुद्ध पाठ करता प्रेमाश्रुवर्षण कर रहा था। प्रभु ने उसे आलिंगन कर कहा–"तुम्हारा गीतापाठ ही यथार्थ है।"

वहीं त्रिमल्ल भट्ट नामक एक विप्रवर ने सुदीर्घविग्रह गौरसुन्दर को प्रेमाश्रुसिक्त देखकर उन्हें श्रीकृष्ण मानकर अपना बड़ा सौभाग्य समझा। पैर पकड़कर कातर निवेदन किया–हे महात्मन्! प्रभो! आप करुणापर -वश होकर सतत कृपावर्षण करते हैं। श्रीकृष्ण को छोड़ ऐसा कोई नहीं, जो स्थावर-जंगम सबका उद्धार कर सके। हे नाथ! वर्षाऋतु आने को है, अपने इस भृत्य का मंगल विधान कीजिये।"

प्रभु त्रिमल्ल की बात सुनकर आलिंगन कर उनके घर चले गये। जगन्नाथ गौरहरि जब आराम से विराज गये, तो उस ब्राह्मण ने प्रभु के श्रीचरण-प्रक्षालन कर उस जल को सपरिवार ग्रहण किया।

ब्राह्मण का 'गोपाल' नाम का बालक वहाँ खेल रहा था। दयालु प्रभु ने अपना चरणकमल उसके सिर से लगाकर कहा–"हरि बोलो'। वह बच्चा अपनी बाल्यक्रीड़ा त्यागकर नृत्य-कीर्तन करने लगा।

श्रीकृष्णसंकीर्तनभावभावुक गौरहरि ने वर्षाकाल त्रिमल्ल भट्ट के यहाँ बिताया। श्रीरंगक्षेत्रवासी विप्रों ने अपनी सेवा से प्रभु को बड़ा सुखी किया। सुमेरु से भी अधिक सुन्दर तनु रसिकशेखर गौरहरि श्रीकृष्ण-नामगुण-गायन में मत्त रहते और श्रीराधा की रसमयी वार्ता से गद्‌गद् कण्ठ प्रेमाश्रु-सिञ्चित बने रहते।

**"मेरुसुन्दरतनू रसिकेशः कृष्णनामगुणकीर्तनमत्तः ।**
**राधिकारसविनोदगद्गद्-प्रेमवारिपरिपूरितदेहः ।।"**

श्रीरंगक्षेत्र से प्रस्थान करने पर प्रभु की भेंट हुई श्रीमाधवेन्द्रपुरी के शिष्य परमानन्द (पुरी) से। प्रभु को देखकर पुरी गोस्वामी को अपने गुरुदेव की बात का स्मरण हुआ और वे प्रेमाश्रुपुलक से भर उठे। धर्म पालक ईश्वर (गौरहरि) ने भी अपने भृत्य के साथ पुरी गोस्वामी को सप्रेम दण्डवत् प्रणाम किया। यह देखकर पुरी महाराज ने संकोच करते हुए कहा–"आप तो जगत् को चैतन्य करानेवाले जगन्नाथ हैं; मेरे प्रति ऐसा आचरण ठीक नहीं। मैं जानता हूँ, आप साक्षात् भगवान् हैं, श्रीकृष्णभक्तरूप धारण किये हैं, श्रीराधामाधव-विभावित माधुर्यरस-लम्पट हैं।"

**ज्ञातोऽसि भगवान् साक्षात् श्रीकृष्णभक्तरूपधृक् ।**
**श्रीराधाभावमापन्नो माधुर्यरसलम्पटः ।।**

पुरीराज की बात सुनकर प्रभु ने हँसकर आदर के साथ कहा–"मैं आपके प्रेम से बँधा हूँ, इसमें सन्देह नहीं। मैं जब तक लौट कर न आऊँ, तब तक आप श्रीक्षेत्र में रहिये।"

**षोड़श सर्ग :** हे विप्रवर (दामोदर पंडित)! चलते-चलते जगत्-बन्धु गौरहरि ने सात ताल देखे और हँसते हुए स्पर्शमात्र से उन वृक्षों का उद्धार कर दिया। देखते-देखते वे सप्तताल मुनि-शाप से मुक्त होकर अपना पूर्व गन्धर्वरूप धारण कर प्रभु को प्रणाम कर अपने लोक में चले गये। श्रीकृष्णरस-महामत्त प्रभु नाम करने लगे–"**श्रीराम गोविन्द हरे मुरारे, जनार्दन श्रीधर वासुदेव!**" फिर नामामृत-पान किया–

**"स्वभक्तरक्षाकर राघवेन्द्र सीतापते लक्ष्मणप्राणनाथ ।**
**सुग्रीवहृद् बालिवधातिदुःखित मरुत्सुतानन्दन रावणारे।।"**

इस प्रकार नाम-कीर्तन करते हुए सर्वदा शिव-प्रियतम हरि ने सेतु-बन्ध रामेश्वर (शिव) के दर्शन किये। सर्वेश्वर प्रभु ने हाथ जोड़कर गौरी-रसद सदाशिव को प्रणाम किया। भावविभोर होकर नृत्य किया, तो पृथ्वी ताल-ताल पर संनमित होने लगी। उपस्थित जनसमूह प्रभु को निजनामानन्द में नृत्य करते देख विस्मयाभिभूत था, तभी प्रभु अदृश्य हो गये।

क्रमशः सभी तीर्थों के दर्शन कर कृपासागर प्रभु श्रीजगन्नाथपुरी लौटते समय गोदावरी-तीर पर रसज्ञ रामानन्द राय द्वारा सुपूजित हुए। केवल तीर्थकथा और श्रीराधाकृष्णरस-आलापन में रात बिताकर रसिकेन्द्रमौलि गौरचन्द्र ने राय महाशय को आज्ञा दी—शीघ्र ऐसा करो कि नित्य कमलनयन जगन्नाथ के दर्शन कर सको। इससे अधिक सुखकर और कुछ नहीं।

जर्नादन गौरहरि विष्णुदास नामक विप्र के साथ आलालनाथ आये। आलालनाथ दर्शन कर, वहाँ कुछ दिन ठहर कर नीलाचल आ गये। पुरी में श्रीकाशीनाथ के यहाँ गये; पग-प्रक्षालन कर सार्वभौम आदि के साथ श्रीरत्नमन्दिर में प्रवेश किया। श्रीपति श्रीकृष्ण ने भक्तिरस से भरकर गरुड़स्तम्भ का सहारा लेकर सर्वेश्वर जगन्नाथ के दर्शन किये। जैसे कृपण व्यक्ति धन प्राप्त कर अपने आनन्द को व्यक्त नहीं कर पाता, उसी प्रकार भक्तवृन्द दोनों ओर श्याम और गौरसुन्दर को देखकर एक अनिर्वचनीय आनन्द-सिन्धु में डूब गये। समस्त रसों के गुरु, गौरप्रेम-परिपूर्ण नित्यानन्दराम रसमयविग्रह श्याम गौरांग रूपों को देखकर हुंकार, सिंहनाद, जय ध्वनि और ताण्डव (नृत्य) करने लगे। वे गदाधर जगन्नाथ के दर्शन कर पूर्णकाम जो हुए! तभी श्रीकृष्ण की आज्ञा से सुधी पुजारी ने तुलसीयुक्त प्रसादी मालायें लाकर भक्ताभिमानी गौरचन्द्र एवं उनके भक्तों को समर्पित कीं। लोकपावन श्रीगौरहरि और भक्तवृन्द ने अश्रु-पुलक से भरकर जगदीश्वर की प्रसादी मालायें सिरों से लगाईं और प्रणाम किया।

**सप्तदश सर्ग** : एक दिन भगवान् कृष्ण (चैतन्य) भक्तवृन्द से बोले—आप सबका अनुमोदन हो, तो मैं मथुरा जाऊँ। वे सब दुःखी होकर हाथ जोड़कर बोले—"हे कमलनयन! आपके चरणकमलों से अलग होना कौन चाहता है? आप जहाँ विराजते हैं, वहीं सारे तीर्थ आपके सेवापरायण हुए रहते हैं। प्रभो! मथुरा तो आप लीलासुखास्वादन के लिये जायेंगे। दुःखीजनों का त्राण-उद्धार तो करना ही होगा।"

प्रभु ने 'शीघ्र लौटूँगा' कहकर सबको सान्त्वना दी और गंगा-दर्शन के लिये (विद्या) वाचस्पति के यहाँ गमन किया। यह सूचना पाकर नृसिंहानन्द मन ही मन (ध्यान में) जगन्नाथपुरी से मथुरा तक का मार्ग प्रस्तुत करने लगे। सोना, चाँदी, मूंगा, मणिरत्न, सूक्ष्म वस्त्र, डण्ठल-रहित

पुष्प-इन सबकी सहायता से प्रभु का यात्रा-पथ सुसज्जित किया। श्रीकृष्ण की वनलीला और पराक्रम के उद्दीपन के लिये मार्ग को चित्रपटों से सुशोभित किया। जलाशयों को कमलों से भर दिया, हंस-जलकुक्कुट आदि के मधुर निनाद से चहकाया। घाटों को रत्नजड़ित कर दिया। इस प्रकार कानाइ नाटशाला (रामकेलि) तक प्रभु के गमन-पथ को सुख-सुविधापूर्ण बनाकर भक्तों से कहा—प्रभु मथुरा नहीं जायेंगे, कानाइ नाटशाला से ही लौट जायेंगे।

**"अधुना न गमिष्यति मथुरां भगवान् प्रति ।**
**आयास्यतीति जानन्तु कृष्णनाट्यस्थलादपि ।।"**

यथासमय जगन्मंगल श्रीकृष्ण (गौरहरि) हरिकीर्तन करते हुए सपरिकर विप्रवर वाचस्पति के निवास पर उपस्थित हुए। नवद्वीपवासी और समागत देवगण—सभी ने प्रभु का वदनकमल प्राण भरकर देखा, शत-शत नेत्रों की कामना की। प्रभु ने वाचस्पति-भवन में कई दिन रहकर जड़-अन्ध-बधिर सभी का उद्धार किया। वक्रेश्वर के कृपापात्र परम पंडित देवानन्द ने प्रभु के श्रीचरणों में गिरकर अपनी पूर्व दुर्मति (श्रीवास पंडित की अवमानना) की बात निवेदन की और अपने उद्धार का उपाय पूछा। कृपामय प्रभु ने कहा—"श्रीमद्भागवत को साक्षात् सच्चिदानन्द विग्रह श्रीकृष्ण जानकर मात्सर्य आदि दोषों से शून्य होकर पाठ करो। भक्तिरसास्वादन कर आनन्द पाओगे।"

यह सुनकर देवानन्द ने दण्डवत् प्रणाम कर उनकी पगरज से स्वयं को भूषित कर गौरचन्द्र-रस में निमग्न हो बड़ा अद्भुत नृत्य किया।

**अष्टादश सर्ग :** भक्तवृन्द-परिवेष्टित गौरहरि रामकेलि गाँव गये। संवाद पाकर सनातन अपने अनुज रूप के साथ आये और दाँतों में तिनका दबाकर दण्डवत् गिरकर बोले—"मुझ-जैसा पापात्मा अपराधी और कोई नहीं। हे पुरुषोत्तम! यह कहने में भी लज्जा आती है कि मेरे दोष क्षमा कीजिये।"

यह सुनकर जनार्दन प्रभु ने अपना श्रीचरण उनके सिर से लगाकर कहा—"तुम सत्य सत्य ही वृन्दावनवासी हो, इसमें सन्देह नहीं। मैं तुम्हारे साथ आनन्दपूर्वक मथुरा जाना चाहता हूँ। तुम वहाँ लुप्त तीर्थों को और वृन्दावन को प्रकट करो। मेरी कृपा से यह सब कार्य सम्पन्न होंगे। वह

भूमि साक्षात् भक्तिस्वरूपिणी और प्रेमभक्ति-प्रदायिनी है।''

प्रभु की बात सुनकर महाबुद्धि सनातन बोले—''श्रीकृष्ण अपने रमणीय वृन्दावन में श्रीराधा के साथ सदैव क्रीड़ा करते हैं। वह योगी, देव, सिद्ध आदि सभी के लिये अगम्य है। उस निर्जन वृन्दावन में बहुत-से लोगों के साथ जाकर क्या सुख मिलेगा? हे कृष्ण! आप अपने कृपारूपी शस्त्र से हमारी राजपात्र रूपी दृढ़ शृंखला का छेदन कर हमें अपने सान्निध्य में रखकर शक्ति-संचार करें, तो हम आपकी इच्छानुसार कार्य कर सकेंगे।''

सनातन की बात सुनकर प्रभु ने हँसकर कहा—कृष्ण तुम्हारा मनोरथ सदा पूरा करेंगे। इस प्रकार सनातन को सन्तुष्ट कर प्रभु कानाइ नाटशाला में रात को सोचने लगे-सनातन ने ठीक ही कहा। सनातन के मुँह से माधव ने ही कहा है, निर्जन वृन्दावन सत्य ही सुदुर्लभ है। वहाँ भीड़ लेकर जाने से दु:ख ही मिलेगा। अकेला ही जाऊँगा। ऐसा सोचकर सान्द्रानन्दरसमय भगवान् गौरहरि सुबह उठकर श्रीनित्यानन्द के साथ श्रीअद्वैत आचार्य के भवन (शान्तिपुर) गये। अद्वैततनय अच्युत के साथ बराबर ही हास-परिहास-कौतुक करते। रात के समय भक्तवृन्द से घिरे, नित्यानन्द प्रभु के साथ नृत्य-कीर्तन करते।

मातृभक्त-शिरोमणि प्रभु ने शचीमाँ और भक्तवृन्द को नवद्वीप से पुन: बुलवाकर उन सबका दु:ख दूर किया। प्रभु ने शचीमाँ के बनाये चारों प्रकार के द्रव्य (चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय) बड़े आनन्द से भक्तों के साथ खाकर नित्यानन्दप्रभु के मन में कौतूहल उत्पन्न किया। इस प्रकार भक्तों के गाँव-गाँव, घर-घर खा-पीकर उन्हें सुखी कर प्रभु नीलाचल लौटे। वहाँ प्रभु ने श्रीनित्यानन्दराम और गौरप्रेमसुधामत्त गौरांगप्राणवल्लभ श्रीगदाधर पंडित के साथ साक्षात् नन्दनन्दन वंशीवदन गोपीनाथ के दर्शन किये।

गोपीमनोरथामोदी गौरहरि ने गोपीनाथ को आलिंगन किया। गदाधर उन्हें गौरकृष्णात्मक देखकर सुखी हुए। साक्षात् राधास्वरूप गदाधर गोपीनाथ को अपने वक्ष पर धारण कर लाये और स्थापित किया।

गदाधर ने रन्धन कर गोपीनाथ को भोग लगाया और वह प्रसाद

पुलकित देह से गौरचन्द्र के आगे रखा। उनके निर्देश से प्रसाद के तीन भाग कर रसकौतुकी गदाधर ने नित्यानन्द को अपने हाथ से भोजन कराया और स्वयं प्रसाद पाया।

## चतुर्थ प्रक्रम

**प्रथम सर्ग :** नामकौतुकी गौरचन्द्र नीलाचल में स्वरूप गदाधर आदि के साथ नृत्यकीर्तन में विभोर रहते। श्रीसार्वभौम के साथ श्रीरामानन्द आदि क्षेत्रवासी भी श्रीगौरांगरस से भरकर प्रभु के श्रीमुखकमल का मधुपान करते। ये सब आनन्दसिन्धु में डूबे कीर्तन करते और रसिकेन्द्रमौलि गौरांगचन्द्र के साथ अधीर भाव से नृत्य करते।

काशीश्वर, राम, मुकुन्द, वक्रेश्वर, राघव, वासुदेव, शंकर, हरिदास, गौरीदास आदि गौड़वासी। श्रीखण्डवासी रघुनन्दन आदि (जिनके अन्तःकरण गौरांगभाव से भरे रहते)। कुलीनग्रामवासी भक्तवृन्द। ये सब नित्य आनन्दपूर्वक नृत्य गायन और नमन करते। एक दिन नृत्य के पश्चात् स्वयं अच्युत प्रभु ने भक्तों के प्रति परम कृपावान् होकर कहा– "यदि तुम लोगों की कृपा हो, तो मैं अति दुर्लभ रमणीय वृन्दावन हो आऊँ।"

यह सुनकर भक्तजन बड़े दुःखी हुए। प्रभु के वदनकमल की सुधा का पान करने लगे। फिर रोते हुए प्रभु के चरणों में गिरकर दाँतों में तिनका दबाकर कहने लगे–"हे प्रभो! आप ही वृन्दावनचन्द्र हैं, तथापि सभी कार्यों में हम दासों का अनुमोदन चाहते हैं। अब हमें उन्हीं नन्दनन्दन के प्रति उन्मुख कीजिये।"

भक्तवृन्द की बात सुनकर प्रभु ने हँसकर कहा–मैं सदा तुम लोगों के निकट ही रहूँगा। रोते हुए भक्तवृन्द को बार-बार आलिंगन कर सान्त्वना देकर और 'शीघ्र ही आऊँगा' कहकर प्रभु वृन्दावन-यात्रा पर निकले।

साथी बलदेव आदि उत्कण्ठा से भरे मत्त सिंह की तरह दौड़ते प्रभु के पीछे-पीछे भागे! जहाँ भी कोई पर्वत-नदी दिखाई दे, प्रभु उसे गोवर्द्धन यमुना समझ लें और हुंकार करें, मत्त गजराज की तरह चलने लगें। कभी नृत्य करें, रोयें और भूमि पर लोटपोट करें।

काशी पहुँच कर विश्वेश्वर महालिंग के दर्शन कर प्रभु आनन्द-

विभोर हो गये। वहाँ तपन मिश्र नामक एक वैष्णव प्रभु को देखकर परम आनन्दित होकर अपने घर ले गये। प्रभु का चरण-प्रक्षालन कर अच्छी तरह पूजा की। प्रसाद पाकर जगद्गुरु गौर हरि ने विश्राम किया। मिश्र-तनय रघुनाथ पर महाकृपा-वर्षण किया। (वहाँ) चन्द्रशेखर वैद्य के घर रहकर काशीवासियों को हरिभक्ति में रत किया। हरिसंकीर्तनामोदी प्रभु अपने भक्तों से घिरे 'हरिबोल' कहकर भुजायें उठाकर नृत्य करते।

**द्वितीय सर्ग :** प्रभु प्रयाग पहुँचे। श्रीमाधव के दर्शन कर प्रेमानन्द से भरकर भक्तजनों के साथ नृत्य किया। श्रीअक्षय वट के दर्शन और त्रिवेणी-स्नान किया। तत्पश्चात् यमुना में स्नानकर सिंह की तरह नृत्य किया। हुंकार करते हुए अश्रु-पुलकभरी देह से यात्रा करते यमुना पार पुण्यक्षेत्र रेणुका गाँव पहुँचे, जहाँ महात्मा महायोद्धा परशुराम अवतीर्ण हुए थे। यहाँ यमुना सदा वृन्दावनमुखी है। तत्पश्चात् प्रभु राजग्राम गोकुल देखकर विह्वल हो गये। फिर महावन और परम ऐश्वर्ययुक्त परम सुन्दर राजधानी मथुरा के दर्शन किये। वैकुण्ठ आदि धामों की भी परम आराध्य, श्रीकृष्ण की प्राकट्यस्थली, प्रेमभक्तिप्रदायिनी मथुरा!

**"राजधानीं महैश्वर्ययुक्तां परमशोभनाम् ।**
**श्री वैकुण्ठादिधाम्नां हि परमाराधनं भुवि ।**
**श्रीकृष्णप्रकटञ्चापि प्रेमभक्तिप्रदायिनीम् ।।"**

मधुपुरी को देखकर तो गौरहरि के श्रीअंग में प्रेम की सभी अवस्थायें प्रकट हो उठीं। वे हास्य, रोदन, नृत्य, भूलुण्ठन करते-करते पुलक से भर गये। प्रभु को देखकर एक ब्राह्मण तो प्रेम से अधीर हो उठा। उस पुण्यात्मा को कण्ठरोध हो गया; वह पुलकित देह से जगदीश्वर के चरणों में गिर पड़ा। प्रभु ने पूछा—"आप कौन हैं? मेरा सौभाग्य है कि आपकी इस प्रेमविह्वल मूर्ति के दर्शन किये।"

ब्राह्मण ने कहा—"हे दयालु भगवन्! मैं आपका दास हूँ। मैं नाम का ही कृष्णदास हूँ, पर आपके दर्शन से भाग्यवान हूँ। हे कृपानिधे! हे नन्दकिशोर गौर! मुझे वैष्णवपगरज से पवित्र कीजिये।

**कृपानिधे वैष्णवपादरेणुभिः ।**
**पुनीहि मां नन्दकिशोर गौर ।।"**

ब्राह्मण की बात सुनकर प्रभु ने आनन्दसिन्धु में मग्न होकर कहा—

"आप निश्चय ही कृष्णदास हैं। हे द्विजवर! आप श्रीकृष्णधाम की रहस्य-लीलायें जानते हैं, मुझे सुनाइये।"

इस पर ब्राह्मण बोला—"हे केशव! आप भक्तजनाभिमानी हैं, फिर भी अपने चरण मेरे हृदय में स्थापित कर अपना मथुरामण्डल प्रकट कीजिये।"

कृष्णदास की बात से तृप्त होकर प्रभु ने मेघगम्भीर स्वर में कहा—"मेरी आज्ञा से श्रीकृष्णलीला और धामसमूह आपके हृदय में सदा स्फूर्त हो।"

यह सुनकर कृष्णदास प्रभु के चरणों में गिरकर कहने लगे—आपके श्रीचरण मस्तक पर धारण कर मैं आपको सभी तीर्थों के दर्शन कराऊँगा। यह कहकर वह गौररसोन्मत्त हो नृत्य करने लगे, रोने लगे। गौरहरि ने भक्तिरस से भरकर श्रीराधाकृष्ण का रासविलास जलक्रीड़ा आदि सुनाते हुए वह रात बिता दी।

**तृतीय सर्ग :** प्रभु ने रात्रि क्षण की तरह बिताकर उत्कण्ठित होकर कृष्णदास से कहा—हे सखे! मुझे व्रजमण्डल के दर्शन कराइये। इस पर वे ब्राह्मण बोले—हे ब्रह्मन्! मथुरामण्डल में यमुना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सर्वेश्वर गोपगोपीरसामोदी नराकृति परमात्मा कृष्ण ने यहाँ बड़े आनन्द से रास जलकेलि आदि सम्पन्न किये हैं। कालिन्दी के पश्चिम में मधुवन, वृन्दावन, कुमुदवन, खदिरवन, तालवन, काम्यवन, और बहुलावन हैं। पूर्व में भद्रवन, विल्ववन, लोहवन, भाण्डीरवन, महावन हैं। रसिकजन इनका ध्यान करते हैं, भक्तों को छोड़ और कोई इनका माहात्म्य नहीं जानता। यमुना के पश्चिम में कंसभवन है, उसके उत्तर में परम रम्य सुदुर्लभ वृन्दावन है। उसके नैऋत् कोण में कुमुदवन और उसके दक्षिण में खदिरवन—दोनों ही कृष्ण को सुख देनेवाले!

मथुरा के पश्चिम में केशववल्लभ तालवन है; वहाँ भुवनपावनी मानसीगंगा की धारा विद्यमान है।

वृन्दावन के पश्चिम में गिरि गोवर्धन के तटप्रदेश में श्रीकृष्ण ने नौकाविहार आदि लीलायें की हैं।

गोवर्धन के पश्चिम में कृष्ण-रसायन काम्यवन है। पास ही महापुन्या शुभा सरस्वती नदी ने मथुरा के उत्तर में यमुना में प्रवेश किया है।

मथुरा के ईशान कोण में बहुलावन है; कृष्ण मानसीगंगा पार कर वहाँ क्रीड़ा करते हैं। बहुलावन को 'मोहन' भी कहते हैं। हे महाभुज! हे रसिकवर! यमुना के पश्चिम में सात, पूर्व में पाँच वन हैं।

विल्ववन कृष्णप्रेमफल प्रदाता है। उसके उत्तर में लोहवन, भद्रवन और कृष्णभक्तिप्रद भाण्डीरवन है। योगेश्वरेश्वर कृष्ण इन द्वादश वनों में विहार करते हैं। हे हृषिकेश! यदि मुझ पर आपका अनुग्रह हो, तो मैं प्रत्येक वन दिखाऊँगा। मेरा भवमोचन भी होगा।

**चतुर्थ सर्ग** : हे करुणासिन्धो! पहले राजधानी मधुपुरी के दर्शन कीजिये। इसके तीन ओर दुर्ग-प्राचीर है और पूर्व में यमुना दक्षिण-अभिमुखी होकर प्रवाहित है। उत्तर और दक्षिण में रत्नजड़ित कपाटवाले द्वार। नैऋत् कोण में कंस की नाना रत्नों से अलंकृत राजबाड़ी। पुरी के वायुकोण में कारागार और उसके दक्षिण में मूत्रस्थान है। इसका विवरण सुनिये।

कंस के भय से महामना वसुदेव कृष्ण को गोद में लिये नन्दगोष्ठ जा रहे थे। कृष्ण का मूत्रवेग देखकर वसुदेव ने तुरन्त आनन्द से उस पत्थर पर मूत्रत्याग कराया। हे प्रभो! श्रीकृष्ण का मूत्रचिह्न आज भी विद्यमान है। उसके दक्षिण में उद्धव का घर देखिये। यह सुनते ही प्रभु ने हुंकार किया, तो वह विप्र हाथ जोड़कर कहने लगा-हे लीलामय जगद्गुरो कृष्ण! स्थिर होकर सुनिये और देखिये, आप निश्चय ही सुख पायेंगे।

उद्धव-निवास के पूर्व में रजक का घर, उसके पूर्व में मालाकार का; उसके दक्षिण में देवनिर्मित कुब्जा-गृह और उसके नैऋत् कोण में रंगस्थल। रंगस्थल के अग्निकोण में वसुदेवजी का भवन है; उसी के ईशान कोण में उग्रसेनजी का ब्रह्मानिर्मित भवन है। उसके दक्षिण में 'गतश्रम' नामक कृष्णमूर्ति देखिये। (गौरहरि उसके दर्शन कर पुलकित हो उठे।) दक्षिण में ही महाप्रभाशील द्वादश तीर्थराज (घाट) हैं—विश्राम, प्रयाग, तिन्दुक, सप्तर्षि, मोक्ष, कोटि, बोधि, शिव, गणेश इत्यादि।

पुरी के दक्षिण में कृष्णसुखदा रंगभूमि है; उसी के दक्षिण में एक कूप। श्रीकृष्ण को फेंकने के लिये कंस द्वारा खुदवाये इस कूप को 'कंसकूप' कहते हैं। उसके नैऋत् कोण में अगस्त्य कुंड है। पुरी के उत्तर में सप्तसमुद्र कुण्ड है।

और इस प्रस्तर को देखिये! देवकी के पुत्रों को नष्ट करने के लिये कंस ने प्रस्तुत कराया था। हे प्रभो! इसके उत्तर में भूतेश्वर शिवलिंग के दर्शन कीजिये। और यहाँ पुन: यमुना-दर्शन कीजिये-सरस्वती के साथ मिली हुई। यहीं दशाश्वमेघ घाट और सोमतीर्थ हैं। ये कण्ठाभरण, नागतीर्थ, संयम कुण्ड। ये सब मधुपुरी को घेरे हैं।

इस प्रकार परमेश्वर गौरहरि ने मथुरा परिक्रमा कर आनन्द से कृष्णदास के घर प्रसाद पाया। कृष्णदास प्रभु की चरणसेवा करने लगे और प्रभु श्रीकृष्णमाधुरी की कथायें सुनाने लगे।

**पंचम सर्ग :** कृष्ण-लीला-गुण-गान करते हुए प्रभु प्रेमाश्रु विसर्जन करने लगे। पल-पल में पूछते–"कृष्णदास, बताओ तो, यह रात क्या मुझे दु:ख देने के लिये ही लम्बी हुई है?" कृष्णदास बोले–'हे नाथ! विज्ञजनों ने मथुरामण्डल का परिमाण चौरासी कोस बताया है। हे भक्तवत्सल! यदि आप स्थिर चित्त हों, तो मैं सभी तीर्थों के दर्शन कराऊँगा। अगस्त्य कुंड के उत्तर में श्रीकृष्ण द्वारा तैयार किया गया 'सेतुबन्ध' सरोवर है....

यह सुनकर प्रभु ने सादर सविस्मय पुलकित देह से कहा– विस्तार से वर्णन करो। इस पर कृष्णदास सहास्यवदन बोले–एक दिन रसिक शेखर गोपिकारसविनोदी हरि 'मैं ही रघुवरमणि' हूँ कहकर इस सरोवर में नवीन हस्ती की तरह क्रीड़ा करने लगे। यह सुनकर रमणी-शिरोमणि राधा बोलीं– तुम तो गोपेन्द्रतनय हो, गायें चराते हो। सत्यधर्म-प्रतिपालक राजा रामचन्द्र के कार्य तुम्हारे लिये असम्भव ही हैं। सिन्धु-बन्धन और रावण-वध उन्हें ही शोभा देते हैं। बालिकाओं के वस्त्राभूषण चुराने वाले! अपना गुणगान मत करो–"**मा कुरु निजगुणप्रकाशनं बालिकावसनभूषण चौर!**"

यह सुनकर हास्य-कौतुकरस-विलासी कृष्ण ने कहा– तुम गोप कुमारी हो, मैं ही सभी सद्‌गुणों की खान हूँ, यह जान लो। पत्थर जल में तैरते हैं कि नहीं, हे भावनिधि राधे! यह साक्षात् देख लो न! बहरहाल, परम रसिका राधिका की बात सुनकर सहचरियाँ वृक्षयुक्त पत्थर लाने लगीं और कृष्ण ने उन प्रस्तरों से सरोवर बाँध दिया। यह देखकर गोपियाँ जयध्वनि और प्रणाम कर कृष्ण की प्रशंसा करने लगीं।

ससखी श्रीराधाकृष्ण की लीला परम मधुर रसमयी, सतत प्रेमपूर्ण है। रसिक जन इसका श्रवण कर युगल का स्मरण, ब्रह्मानन्द का उपहास, और मोक्ष का तिरस्कार करते हैं।

श्रीगौरहरि इस परम अद्‌भुत कृष्ण रहस्य को सुनकर राधारसावेश में (प्रेम) विवश होकर सानन्द नृत्य करने लगे।

**षष्ठ सर्ग :** कृष्णदास ने यमुना पार कर प्रभु को महावन में नन्दगृह और कृष्ण के विभिन्न लीलास्थल दिखाये—यहाँ पूतना-मोक्षण हुआ, यहाँ शकटासुर-मोचन; यहाँ दुर्वृत्त तृणावर्त का वध किया। यहाँ कृष्ण ने मुँह फाड़ कर अपने उदर में माँ को अद्‌भुत विश्वब्रह्माण्ड दिखाया। भयभीत होकर भी माँ ने कृष्ण को आशीर्वाद दिया था। यहाँ गर्गाचार्य ने नामकरण किया था। यहाँ मृत्तिकाभक्षण और विश्वरूप-प्रदर्शन लीलायें हुईं। यहाँ हरि ने माँ के आनन्द के लिये दधिमंथन-दंड (रई) लेकर नृत्य किया था। यहाँ माँ यशोदा ने कृष्ण को स्तनपान कराया। दूध को उफनता देखकर वे कृष्ण को छोड़कर दौड़ी गईं; दूध को चूल्हे से उतार कर लौटकर आईं। कृष्ण ने क्रोध से भरकर पत्थर से दधि भाण्ड में छेद कर दिया; नवनीत खाया और ओखली पर खड़े होकर हँसने लगे। तब माँ ने उन्हें यहाँ दाम (रस्सी) से बाँध दिया। इस प्रकार नाम पड़ा 'दामोदर'।

दामोदर भगवान ने यहाँ यमलार्जुन नामक वृक्षों का भंजन किया था। यहाँ फलदेश्वर कृष्ण ने धान्य देकर फल खरीदे।

महावन के दक्षिण में गोलोक नामक गोकुल है, जहाँ हरि ने माता के आगे विविध बाल्यलीलायें की हैं। हे सर्वेश्वरेश्वर, यहाँ गोपेश्वर के दर्शन कीजिये। यहाँ भुवनपावन सप्तसमुद्र कुण्ड है।

गाँव के पश्चिम में आयान का घर है और इसके दक्षिण में आनन्द गोप का निवास। गाँव के बीच में उपनन्द का कृष्णसुखप्रद गृह है, और इसी के पश्चिम में रावण का तपोवन है। हे कृष्ण (चैतन्य), इसके उत्तर में दुर्वासा मुनि का आश्रम है और पास ही लोहवन विल्ववन हैं।

इस स्थान पर कृष्ण अपनी बाल्यलीलाओं से नन्दजी को आनन्द दे रहे थे। हठात् मेघों को घिरा देखकर नन्दजी ने एक सुन्दर गोपिका से कहा—कृष्ण को शीघ्र ले जाकर यशोदा को दो। उस गोपी ने कृष्ण को

गोद में लेकर आनन्दविह्वल होकर चुम्बन किया। कृष्ण ने भी गोपी को प्रगाढ़ आलिंगन किया, तो वह विवश-विस्मित हो गई।

बालकृष्ण की इन रसमयी लीलाओं को सुनकर गौरकृष्ण ने प्रेम से भरकर कृष्णदास को आलिंगन कर लिया। तत्पश्चात् कृष्णदास बोले—हे (गौर) गोविन्द! देखिये, यहाँ गोपाल गोचारण के लिये आये, तो उन्होंने स्वयं ही यह कुण्ड तैयार किया। और यहाँ उपनन्द ने नन्दजी को बुलाकर गोपों की उपस्थिति में कृष्ण-सुख के लिये युक्ति बनाई थी। नन्द महाराज व्रजवासियों के साथ राम-कृष्ण को लेकर शकटारोहण कर भद्र-भाण्डीर वन गये, वहाँ दो माह रहे।

**सप्तम सर्ग :** तत्पश्चात् नन्द आदि गोपों ने यमुना-पार सनातन वृन्दावन जाकर अनलस होकर वास किया। देखिये, यहाँ पिता आदि गुरुजनों ने शकटों से दुर्ग बनाया था; राम-कृष्ण गो-गोपालों के साथ खेलते थे। हे गौरचन्द्र! इस कपित्थ (कैथ) वृक्ष के नीचे कृष्ण ने वत्सरूपी वत्सासुर को और वकवेशी वकासुर को मारा था। और यहाँ, उन दोनों भाइयों ने, जगत्पति होकर भी वेणु-वेत्र आदि से युक्त सखाओं के साथ वानर-पक्षियों का अनुकरण करते हुए क्रीड़ायें कीं। यह सुनकर रसिकेन्द्रमौलि भक्तरूप प्रभु गौरचन्द्र कृष्णरस से भर उठे। वे पूर्व लीला (व्रजलीला) में प्रेम के विषय और वर्तमान में रस के आश्रय हैं— **''पूर्वापराभ्यां विषयाश्रयावृतो लीलारसाभ्यां प्रभुगौरचन्द्रः।''**

हे गौरांग! यहाँ वकासुर का अनुज महापाप अघासुर सर्परूप धारण कर आया, तो हरि ने उसका वध कर दिया। यहाँ स्वजन-सखाओं के साथ कृष्ण का भोजनविलास देखकर स्वयम्भू (ब्रह्मा) गोवत्स-गोपालों को चुराकर ले गये, एक वर्ष तक छिपाकर रखा। इस स्थान पर धेनुकासुर का वध किया; कृपा कर मुक्ति भी दी। और यह है सुनिर्मल कालीयदमन ह्रद (कालीदह)। हे जगद्गुरो! कालीयदमन कृष्णमूर्ति के दर्शन कीजिये। यहाँ कृष्ण शीतार्त होकर जल से बाहर आये थे। (उनके सेवा-सुख के लिये) गगन मण्डल में द्वादश आदित्य (सूर्य) एक साथ उदित हुए थे, इसलिये वेदज्ञ इस स्थान को द्वादशादित्य घाट कहते हैं। यहाँ भक्तदु:खहारी नन्दकुमार ने वत्सपालकों की दावानल से रक्षा की थी। और यहाँ, खेल में हार जाने के कारण कृष्ण ने श्रीदाम नामक

बालक को तथा प्रलम्बासुर ने बलराम को अपने कंधों पर वहन किया था। यह जानकर कि यह असुर है, बलदेव ने उसके सिर पर मुष्टि-प्रहार किया तो उसने देह त्याग दी।

यह देखिये भाण्डीर वट-वृन्दावन में महत्तम! यह ईषिका वन (मुंजाटवी) है। घास के लालच में गायें घुस आईं, तो कृष्ण ने वंशीनाद कर वापस बुलाया। उधर निज जनों को दावानल में फँसा देखकर भक्तप्रिय हरि ने हथेली से अग्निपान किया। यहाँ रसज्ञ कृष्ण ने जो लीला की, वह भी सुनिये। कृष्ण को पतिरूप में पाने की इच्छा से गोपकुमारियों ने व्रत रखा था। यमुना-तट पर अपने वस्त्रआभरण रखकर वे सब जल में उतरीं, तो नागरराज तुरन्त उनके वस्त्र लेकर कदम्ब पर जा बैठे और हँसने लगे। बहरहाल, शीतार्त गोपबालाओं ने शुद्धभाव से भरकर उन्हें सन्तुष्ट किया। और यहाँ, यज्ञभुक् कृष्ण ने विप्रपत्नियों से अन्न माँगकर बलराम और अन्यान्य गोपबालकों के साथ भोजन किया था।

**अष्टम सर्ग :** कंस से पुनः भयभीत होकर नन्द महाराज स्वजनों से परामर्श कर व्रजवासियों के साथ नन्दीश्वर रहने लगे। कृष्ण-बलराम गिरि गोवर्द्धन पर और मानसीगंगा के किनारे सखाओं के साथ नित्य विहार करते। सात वर्ष के हरि ने निजजनों की रक्षा के लिये और इन्द्र का गर्व चूर करने को सात दिन तक सानन्द गोवर्द्धन धारण किया।

रसकौतुकी कृष्ण मानसी गंगा में नौकाक्रीड़ा करते। और यहाँ, भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वे दान के बहाने गोपियों के साथ विविध लीला-विलास करते।

उक्त दाननेदी (साँकरी खोर—सँकरे रास्ते) को देखकर गौरचन्द्र लीला-आस्वादन में ऐसे डूबे कि बाह्यज्ञानशून्य होकर वंशी, श्रीवत्स, वेत्र आदि धारण कर कुसुम-किसलय आदि से सजे श्याम-स्वरूप हो कहने लगे—हे रसवति राधे! मुझे दान दो, मैं विमल दान का ही पात्र हूँ! ऐसा कहकर जो राधा का स्तव कर रहे हैं, वे राधिका-प्राणनाथ गौरांग जययुक्त हों!

**'पश्यन् श्रीगौरचन्द्रः स रसनकुतुकाद्वाह्यवृत्तिं विहाय,**
**वंशीश्रीवत्सवेत्रैः कुसुमकिसलयैर्मण्डितं श्यामधाम ।**

**दानं मे देहि राधे रसवति विमले दानपात्रेऽवद् यो,**
**ह्येवं तां स्तौति गौरः स जयति खलु भो राधिकाप्राणनाथः ।।"**

अखिलेश्वर गौरहरि भक्तिरस-आविष्ट होकर सहसा रोने लगे और (दानवेदी) के उस प्रस्तर को अश्रुसिक्त कर सिर से स्पर्श करने लगे।

इस पर्वत के पूर्व में कृष्णरसप्रद दो कुण्ड देखिये। उसके दक्षिण में उत्तम रासमण्डल है—राधाकृष्ण के रासविलास का स्थान, प्रेमरसपूर्ण भक्तवृन्द द्वारा ही ध्येय।

श्रीराधा-माधव-एकाकृति होने के कारण गौरसुन्दर लीला के अनुरूप भाव-विभावित होकर उन-उन लीलाओं का अनुकरण कर दिखाने लगे—

**राधामाधवोरैक्यात्तत्तद् भावविभावितः ।**
**तत्तल्लीलानुकरणं गौरांगः समदर्शयत् ।।"**

ब्राह्मणश्रेष्ठ कृष्णदास भाव-प्रकाशक कृष्ण (चैतन्य) से बोले—वह देखिये, पर्वत के ऊपर राधिका का आराधनास्थल है। हरि ने इन्द्र का उत्पात देखकर इस गिरि गोवर्द्धन को उठाया था; यह सुरेश का गर्वनाशन अन्नकूट स्थल है। इस पर्वत पर हरिराय प्रभु के दर्शन कीजिये; उनके दक्षिण में गोपाल राय हैं। इन्द्र का गर्व चूर होने के पश्चात् ब्रह्मा द्वारा प्रेरित सुरभि ने यहाँ मन्दाकिनी के जल से गोविन्द का अभिषेक किया। उस अवसर पर वेद आदि सभी ने बड़े समारोह के साथ गोविन्द की सेवा की; अपराधी देवेन्द्र भी उनकी स्तुति कर निर्भय हुए।

इस पर्वत के दक्षिण में सर्वपापहर कुण्ड है। ब्रह्म कुण्ड, रुद्र कुण्ड, इन्द्र कुण्ड, सूर्य कुण्ड और मोक्ष कुण्ड—यह पाँच कुण्ड भी हैं।

इन सबको देखकर गौरहरि कृष्ण ने प्रेम से भरकर कृष्णदास से कहा—यह गिरिराज धन्य हैं, यहाँ श्रीरामकृष्ण गोपबालकों के साथ नित्य सानन्द क्रीड़ा करते हैं। गौरहरि ने ऐसा कहा, तो स्वयं श्री गोवर्द्धन उनकी पूजा कर नृत्य करने लगे—"**श्रीगोवर्द्धन एव साग्रहमपि तं पूजयन् नृत्यति।**"

**नवम सर्ग :** यहीं नन्द महाराज द्वादशी व्रताचरण में यमुना-स्नान कर रहे थे, तो कृष्ण-दर्शन के लोभ से वरुण उन्हें अपने लोक ले गये। कृष्ण को पता चला, तो वे वरुणलोक से पिता को लेकर आये। कृष्ण

निजजनों को ब्रह्मकुण्ड में निमज्जित कर ब्रह्मलोक दिखाकर पुनः वृन्दावन ले आये। हे (गौर) कृष्ण, उस परम रमणीय सुदुर्लभ कुण्ड को देखिये। इसके उत्तर में श्रीराधाकृष्ण का विहारस्थल अशोककानन देखिये। यहाँ देवदेवेश्वर श्यामसुन्दर ने कार्तिक पूर्णिमा को गोपियों के साथ रास किया था।

यह सुनते ही रसिकशेखर गौरहरि इन्द्रनीलमणिवत् कान्ति छिटकाते हुए रासोपयोगी रम्य वेश रत्नादि धारण कर भक्तों के साथ लीलाचरण करने लगे। सरस रम्य वृन्दावन में वासन्ती वन-पवन प्रवाहित हो गया। अधिक क्या कहूँ? सारी रासस्थली प्रफुल्ल मधुर कान्ति से भर गई और मदनगर्वनाशन गोपीजनवल्लभ ही प्रकट हो गये!!

**"तदैव रसिकाग्रणीः स खलु गौरचन्द्रो**
**हरिर्महामणिनिभद्युतिः प्रकटमेव व्यक्तीभवन् ।**
**स रासरसताण्डवैर्विविधरम्यवेशोज्ज्वलैः**
**रत्नोक्षितसुलक्षितैर्जयति भक्तवर्गैः प्रभुः ।।**
**प्रफुल्लमधुरद्युतिः सरसरम्यवृन्दावनं**
**वसन्तवनमारुतैः प्रकटयन् स रासोत्सवैः ।**
**सुरम्यमपि किं ब्रुवे सकलमेव रासस्थलं**
**स गोपीजनवल्लभो मदनगर्वखर्वी बभौ ।।"**

कृष्णदास यह सब देखकर भी ईश्वर की माया के वशीभूत हो प्रभु को पुनः पूर्वलीलास्थलियाँ दिखाने लगे। बोले—देखिये, यहाँ वंशीवट के निकट खड़े होकर गोविन्द ने गोपीजनविमोहन कामबीज का गायन किया था। उस सुललिल संगीत को सुनकर गोपियाँ एकत्रित हुईं; तो कृष्ण ने प्रेममद से भरकर उन्हें बाह्य धर्मोपदेश किया। गोपियों को विशुद्ध सत्त्व, भाव और प्रेम प्रदाता योगेश्वर कृष्ण ने यहाँ रास किया था; वृन्दावन- आधिपत्य किया था। यहाँ रासरस-आमोदी कृष्ण गोपियों के अनुराग की वृद्धि के लिये एक गोपी को लेकर सहसा अन्तर्हित हो गये थे। उस गोपी का सुचरित्र भला कौन कह सकता है? उसी स्वाधीन भर्तृका के प्रेम के वशीभूत होकर कौतुकी कृष्ण उसे छोड़ गये और छिप कर हँसने लगे। यह गोपी (श्रीराधिका) उन्हें अदृश्य हुआ देख विह्वल हो गई। तब सभी सखियाँ मिलकर कृष्ण-लीलाओं के गायन और अनुकरण

में तन्मय हो गईं। उन्हें अपने विरह में व्यथित देखकर नारायण कृष्ण ने हँसते हुए दर्शन दिये। गोपियों द्वारा सम्मानित और हास-परिहास में पराजित धर्मज्ञ कृष्ण ने मण्डली बनाकर रास किया। विलास-रसोन्मत्त कृष्ण उन सबको यमुना-तट पर लाये और मन्मथ-मन्मथ (मर्दन) रूप से स्वयं को अनेक स्वरूपों में प्रकट कर सबके साथ आलिंगनबद्ध हो गये।

**"विलासरसमाधुरीरसमदेन मत्तः किल**
**संनीय सुबलो जनान् यमभगिनितीरं हरिः ।**
**प्रकाश्य बहुरूपतां जगदनंगसम्मर्दनो रराज**
**व्रजसुन्दरीनिजभुजैस्तु बद्धः स्वयम् ।।"**

इस रासविलास-वैभव की बात सुनकर गौरहरि प्रेमोन्माद में धैर्य खो बैठे। 'श्रीराधाकृष्ण व्रजवधुओं द्वारा परिवेष्टित हैं'—इस भाव से अपने श्रीअंग में युगल का प्राकट्य दिखाते हुए प्रभु ने माधुर्यसारोज्ज्वल मूर्ति धारण की।

**दशम सर्गः** देखिये, यहाँ वासन्ती वेश में सज्जित और स्वर्णाभूषणों से भूषित श्रीरामकृष्ण ने अपनी-अपनी यूथेश्वरी व्रजसुन्दरियों के साथ आनन्दपूर्वक नृत्य-गायन किया था। वे विहार कर रहे थे, तो दुर्मति (यक्ष) शंखचूड़ आया और गोपियों को सताने लगा। श्रीकृष्ण ने उस खल का वध कर उसके सिर की स्यमन्तक मणि निकालकर बलदेव को दे दी। गोपियाँ उस मणि को ललचाई दृष्टि से देखने लगीं। किन्तु बलराम ने वह कृष्णप्रेयसी राधा को दे दी।

गायों के साथ वन-वन जाने वाले दोनों भाइयों के मुखारविन्दों को देखकर व्रजसुन्दरियों ने जो गीत गाया था—'**अक्षण्वतां फलमिदमिति**' (आँखें धारण करने का यही फल है—भा० 10.21.7)—उसे सुनकर पुलकित होकर प्रभु बार-बार रोने लगे।

यह कुमुदवन है, जहाँ श्रीरामकृष्ण ने श्रीदाम सुबल आदि सखाओं के साथ सानन्द क्रीड़ा की थी। और यहाँ सरस्वती तीर पर अम्बिकावन में व्रजवासी गौरी-शंकर की पूजा करते हैं। यहाँ अंगिरा ऋषि के पुत्र के शाप के कारण सुदर्शन नामक गन्धर्व सर्पदेह से रहता था। वह नन्दजी को आधा निगल गया, तो श्रीकृष्ण ने अपने चरणस्पर्श से उसका उद्धार

किया। वह पुनः गन्धर्व रूप प्राप्तकर श्रीकृष्ण का गुणगान करता अपने धाम चला गया।

और यह वृषभानुपुर देखिये। यहाँ वृन्दावनेश्वरी महालक्ष्मी श्रीकृष्ण-विलासिनी राधा आविर्भूत हुई थीं—

**"वृषभानुपुरं पश्य यत्र वृन्दावनेश्वरी ।**
**प्रादुर्भूता महालक्ष्मी राधा कृष्णविलासिनी ।।"**

इस रैवतक पर्वत पर रसाग्रणी बलदेव ने गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हुए द्विविद वानर को मारा था। उन्होंने कालिन्दी को आकर्षित किया था। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने यमुना में प्रवेश कर गोपियों के साथ यथेष्ट जलकेलि की और उन्हें वस्त्राभूषणों से अलंकृत किया।

नन्दगाँव के उत्तर में यह पावनसरोवर देखिये। यहाँ नन्दजी के गोवत्स कृष्ण की देखरेख में घास चरते हैं। नन्दीश्वर के पश्चिम में काम्यवन है; वहाँ पिच्छल नामक निर्मल पर्वत विद्यमान है। इस पर्वत पर श्रीकृष्ण-बलराम बालकों के साथ खेलते थे। अरिष्ट, केशी, व्योम तीन असुर वृष, अश्व और मेष बनकर कृष्ण के पास आये, तो कृष्ण ने उनका वध कर दिया। हे गौरांगसुन्दर! इस रम्य खदिरवन को देखिये— फल पुष्पों से युक्त, मृदु मन्द पवन द्वारा संचालित! श्रीराधा-कृष्ण यहीं रसावेश में गोपियों के साथ निरन्तर क्रय-विक्रय-लीला विलास करते हैं। नाना प्रकार के तरु-लताओं से सुशोभित और पक्षियों से मुखरित पुष्पवितान में विराजमान् श्रीराधा-माधव जययुक्त हों। यहाँ मधुर वंशी-ध्वनि द्वारा प्रमत्त तरुणियों के हास्य नृत्य-गीत के मध्य कन्दर्पलीलापरायण रासेश्वर-रासेश्वरी रसविशेष का सतत आस्वादन करते हैं। श्रीराधाकृष्ण-विलासवैभवरस की बात सुनकर प्रभु ने रोते हुए उन महामाधुर्यसार रूपों (युगल स्वरूपों) को प्रकट किया। फिर सान्द्रानन्द श्रीशचीनन्दन प्रकृतिस्थ होकर विराजने लगे।

**एकादश सर्ग :** कंस द्वारा प्रेरित अक्रूर रथ लेकर आये। श्रीरामकृष्ण का स्मरण कर दर्शन-उत्कण्ठा से भर गये। नाना मनोरथों से युक्त अक्रूरजी की देह प्रेमाश्रु-पुलक से भर गई। मार्ग में दोनों भाइयों के पावन चरण-चिह्न देखे, तो तुरन्त रथ से उतरकर वह रज सिर से लगाई; दण्डवत् गिरकर दोनों भाइयों को प्रणाम किया। श्रीराम-कृष्ण बड़े आदर के साथ उन्हें

घर ले गये। महात्मा नन्द ने बड़ा सत्कार किया; कंस का अभिप्राय जानकर सबको मथुरा जाने की बात बताई।

परम वात्सल्यमयी यशोदा माँ ने तुरन्त श्रीराम-कृष्ण को हाथ पकड़कर अपनी गोद में बिठाया और कृष्ण से कहा—तुम क्या दोनों ही मुझे छोड़कर मथुरा जाने की सोच रहे हो ? तुम्हारे मुखचन्द्र देखे बिना मैं जीवित कैसे रहूँगी ? कृष्ण बोले—नहीं, नहीं माँ, हम सदा तुम्हारे निकट, तुम्हारी गोद में ही रहेंगे, इसे सत्य मानो, इसमें सन्देह नहीं।

**''न हि न हीति मातस्त्वत्सन्निधिं क्रोड़मास्थितौ ।**
**तिष्ठावस्त्वं विजानीयाः सत्यं सत्यं न संशयः ।।''**

यह सुनकर प्रेममयी माता दोनों के मुख चुम्बन कर सुखी प्रकृतिस्थ हुईं और सोचने लगीं कि दोनों हृदय में स्थित हैं। पर थोड़ी ही देर बाद वे असहाय सन्तप्त होकर जगत् को शून्य देखकर दासियों से पूछने लगीं—अरे यह यम-सा राजदूत कौन है, जिसने दूरदेश से आकर सारे व्रजवासियों के प्राण हर लिये हैं ?

**''कोऽसौ दूरात् शमनसदृश आगतो राजदूतो**
**नन्दद्वारि सकल व्रजजन प्राणसंबाधकारी ।।''**

व्रजस्त्रियाँ श्रीरामकृष्ण के मथुरा गमन की बात सुनकर नाना प्रकार के भावविकारों से युक्त दिव्योन्माद की स्थिति में पहुँच गईं। और तभी अपने-अपने प्राणनाथ (कृष्ण) को अपने-अपने पार्श्व में देखकर वे कृष्णवल्लभायें प्रेमविह्वल हो उठीं। अहा! उनकी उस प्रेमसम्पत्ति का वर्णन कौन कर सकता है ?

**''एतन्मध्ये स्वस्वपार्श्वे सर्वास्ता व्रजसुभ्रुवः ।**
**स्वस्वनाथं सुखेनैव पश्यन्त्यः प्रेमविह्वलाः ।।**
**तद्दर्शनमहानन्दैः सम्पूर्णाः कृष्णवल्लभाः ।**
**केन संवर्ण्यते ह्यासां प्रेमवैभवलक्षणम् ।।''**

श्रीकृष्ण ने यूथेश्वरियों के साथ सभी गोपिकाओं को 'शीघ्र आऊँगा' कहकर आश्वासन दिया और अपने हाथों से दोनों हाथ पकड़-पकड़ कर चुम्बन आलिंगन आदि प्रदान किया।

अक्रूरजी व्रजजन-रंजन श्रीराम-कृष्ण को साथ लेकर मानसीगंगा पार कर मथुरा की ओर चल पड़े। कुछ दूर जाकर स्नानार्थ यमुना जल में

प्रवेश किया, तो उन्हें जल में भी रथारूढ़ रामकृष्ण दिखाई दिये। उस विभूति के दर्शन कर अक्रूरजी ने विस्मित होकर प्रणाम किया। वार्तालाप करते हुए सब मथुरा पहुँचे।

सुदुर्मुख नामक रजक का वध कर वस्त्र धारणकर सुदामा मालाकार के घर पहुँचे। उसने अपने परिवार के साथ दोनों भाइयों को सुसज्जित किया। कुब्जा ने भी चन्दन आदि से सुशोभित किया। माधव ने कुब्जा को रूपसी बनाकर धनुर्भंग कर बलदेव के साथ शकट पर जाकर माँ के दिये द्रव्य खाये। भक्तवत्सल कृष्ण ने अग्रज के साथ नन्दजी की गोद में सोकर सुख से रात बिताई। यह सब सुनकर श्रीगौरांग कृष्णभाव से भर गये। कृष्णदास भी उन्हें देखकर विस्मित हुए।

**द्वादश सर्ग :** कृष्णदास बोले— अब दुष्ट कंस की करतूतों का कुछ वर्णन करता हूँ। उस सुदुर्मना कंस ने रात के समय विविध मृत्युदूतों को देखकर झटपट मंच आदि बनवाये। स्वयं मंच पर बैठकर बन्धुबान्धवों को बुला-बैठाकर वह दुर्मद बोला-गोपों के साथ नन्द को आदरपूर्वक मंच पर बिठाओ। वे दोनों बालक कहाँ हैं? मैं उनका द्वन्द्वयुद्ध देखना चाहता हूँ। उसी समय दोनों भाइयों ने द्वार पर खड़े कुंजरराज (कुवलयापीड़) को मारकर उसके दाँत उखाड़कर महारंगभूमि में प्रवेश किया। चाणूर और मुष्टिक को उनके संगी-सहायकों के साथ मारकर कंस का भी वध किया, तो सभी ने सुखी होकर उनका अभिनन्दन किया। वसुदेव-देवकी ने वात्सल्य बरसाया। श्रीकृष्ण नन्दजी के पास जाकर बोले—पिताजी, मैं कुछ दिन मथुरा देखना चाहता हूँ। यदि आप प्रसन्न मन से आज्ञा दें, तो मैं यहाँ रह जाऊँ। आप सब भैया बलराम के साथ आनन्दपूर्वक घर लौट जायें।

कृष्ण की बात सुनकर नन्दजी हँसते हुए बोले—तुम बच्चे हो, मत्त सिंह सरीखे, तुम पर शासन कौन करेगा? "**बालोऽसि त्वं निरंकुशः। मत्तसिंहसमः केन शासितुं शक्यते भवान् ।।**" बलराम और तुम, दोनों ही रहो....। यह कहकर नन्दजी ने दोनों को आलिंगन किया, उन दोनों ने भी पिता की सादर वन्दना की। नन्दजी कृष्ण-बलराम को हृदय में रखकर नन्दीश्वर लौट गये।

वसुदेव-देवकी ने दोनों पुत्रों का उपनयन संस्कार कराया, गायत्री

मंत्र दिलवाया। पारदर्शी ब्रह्मा आदि भी मोहित हो जाते हैं, फिर कौन क्षुद्रबुद्धि श्रीकृष्णचरित्र का वर्णन करेगा? रसमय श्रीकृष्णचैतन्य ने सूत्ररूप में माथुर लीला सुनी; उसी को यथेष्ट माना। वे कभी श्याम, कभी पीत वर्ण धारण कर, कभी लीला-अनुकरण कर विश्व-विमोहन प्रेमद मंगलमय स्वरूप प्रकट कर हास्य-रोदन, नृत्य-गायन-धावन आदि करते। इस प्रकार व्रज में घर-घर में वे लीलायें पुनः प्रकट हो उठीं।

व्योमासुर वध तक पूतना-उद्धार आदि जो-जो लीलायें वृन्दावन में सम्पन्न हुईं, और जो लीलायें अन्य धामों में प्रकट हुईं, वे सभी परम शक्तिशालिनी सर्वसिद्धिदायिका, प्रेमभक्तिप्रदायिनी और नित्य हैं। दरअसल, वे कृष्णस्वरूपिणी ही हैं।

गौरचन्द्र को किसी-किसी ने कर-नवनीत बालरूप में देखा, तो किसी-किसी ने श्रीदाम आदि सखाओं के साथ यमुना तट पर गोचारण करते देखा। अन्यान्य लोगों ने देखा कि वे कैशोरवयस, नवघनश्यामल, गोपिकापरिवेष्टित, वंशीवादनरत हैं। वृन्दावनवासियों ने—बच्चों और पशु-पक्षियों तक ने अपने-अपने रस के अनुरूप प्रभु को विभिन्न रूपों में देखकर आनन्द-कलरव करते हुए घेर लिया और अपने प्राणनाथ कृष्ण को राधाकृष्णात्मक (राइकानुमिलित) ही अनुभव किया।

**"एवं दृष्ट्वा परमरसिकाः श्रीलवृन्दावनस्थाः**
**सर्वे पक्षिमृगपशुगणा बालवृद्धाश्च हर्षात् ।**
**पश्यन्तः स्वं निजनिजरसैर्ह्लादयन्तः परीताः**
**राधाकृष्णात्मकमपि निजं मेनिरे प्राणनाथम् ।।"**

**त्रयोदश सर्ग :** कृष्णदास ने व्रजमण्डल दिखाकर बड़े भक्तिभाव से प्रभु को प्रणाम किया, तो करुणानिधि बोले—कृष्णकथारसामृत-वर्षण कर जैसे तुमने मेरे हृदय को स्निग्ध किया है, वैसे ही कृष्णचन्द्र तुम पर प्रसन्नता बरसायें।

कृष्णदास बोले—मैं आपका ही दास हूँ; आप श्रीनिकेतन कृष्ण हैं—'**तव दासोऽहं त्वं कृष्णः श्रीनिकेतनः ।**' हे प्रभो, ऐसी कृपा कीजिये कि मैं आपके अतिरिक्त और कुछ न जानूँ। शचीसुत गौर ने 'तथास्तु' कहकर कृष्णदास को आलिंगन किया और ब्राह्मणवृन्द द्वारा परिवेष्टित होकर जगन्नाथदेव का स्मरण कर वे नीलाचल के लिये चल पड़े।

यमुना के किनारे-किनारे चलकर प्रभु पुनः प्रयाग पहुँचे। त्रिवेणी-स्नान और माधव-दर्शन किये। तभी श्रीरूप छोटे भाई (वल्लभ) के साथ वहाँ आये। जगदीश्वर गौर को देखकर प्रेम से भरकर दण्डवत् गिर पड़े। उन्हें अलिंगन कर, उनके सिर से अपना श्रीचरण स्पर्श करा प्रभु बोले—मथुरा जाओ, मेरी आज्ञा का पालन करो। वहाँ श्रीराधाकृष्ण की वृन्दावन-भूषणकारी लीलाओं को प्रकट करो; मुझे प्रसन्नता होगी। तुम गौड़देश होते जगन्नाथ-दर्शन को आओगे, तब भेंट होगी। श्रीरूप ने प्रभु के श्रीचरण पकड़कर कहा—मैं आपका श्रीचरण-सेवक बनकर आपका अनुगमन करूँगा। इस पर प्रभु बोले—नहीं, यह नहीं होगा, तुम मथुरा जाओ।

प्रभु काशी में तपन मिश्र के घर पहुँचे। वहाँ उनके प्रिय श्रीमान् सनातन आये। सनातन को देखते ही प्रभु उठ पड़े; बड़े प्यार से दृढ़ आलिंगन कर गद्गद् स्वर में बोले—श्रीकृष्ण की करुणा की महिमा का वर्णन कौन पंडित कर सकता है? उस वलीयसी कृपा ने विषय-कूप से तुम्हारा उद्धार किया है, श्रीकृष्ण का सान्निध्य दिया है, उनकी माधुरी का पान कराया है। साधु! साधु!

प्रभु ने सनातन को शिक्षा प्रदान की और कहा—वृन्दावन जाओ, भक्तिशास्त्रों का निरूपण, लुप्त तीर्थों का उद्धार और उनका माहात्म्य व्यक्त करो। ऐसा करो कि लोगों की अचला भक्ति हो और सारासार-विचक्षण रसिकजन उसका आश्रय लेकर सदा श्रीकृष्णप्रेम की माधुरी का आस्वादन करें।

**"वृन्दावनाय गन्तव्यं भक्तिशास्त्रनिरूपणम् ।**
**लुप्ततीर्थ प्रकाशं च त माहात्म्यमपि स्फुटम् ।।**
**कर्तव्यं भवता येन भक्तिरेव स्थिरा भवेत् ।**
**यामाश्रित्य सुखेनैव श्रीकृष्णप्रेममाधुरीम् ।।**
**पिवन्ति रसिका नित्यं सारासारविचक्षणाः ।"**

श्रीसनातन बोले—आपकी कृपा सभी प्रकार का फल देने वाली और मुझे पवित्र करने वाली है। आपने जो कुछ कहा, मैं समझ गया। यह सुनकर हृषीकेश प्रभु ने हँसकर कहा—तुम परम बुद्धिमान हो। मथुरा-वृन्दावन आदि दर्शन कर तुम श्रीजगन्नाथ दर्शन करने आना।

प्रभु ने कृष्णभक्ति प्रदान कर काशीवासियों का उद्धार किया और सनातन, तपन मिश्र आदि को आलिंगन कर जगन्नाथदेव के दर्शनार्थ नीलाचल-यात्रा की। मार्ग में कृपानिधि भगवान् गौरहरि ने देखा कि एक गोप एक मटका छाछ लिये जा रहा है। वे बोले—हे गोप! मुझे प्यास लगी है, अपनी इच्छा के अनुरूप छाछ दो। यह सुनकर उस ग्वाले ने पूरा मटका दे दिया। भक्तवत्सल प्रभु ने दोनों हाथों से मटकी लेकर छाछ पी और गोपकुमार को वर देकर प्रस्थान किया।

**चतुर्दश सर्ग :** प्रभु कुलियानगर पहुँचे। संवाद पाकर नवद्वीपवासी विद्यावाचस्पति के घर आये। सब प्रभु का वदनकमल देख रहे हैं; लगता है जैसे उस माधुरी का बराबर पान कर रहे हैं, पर तृप्त नहीं हो रहे। जगद्‌गुरु ईश्वर से बोले—प्रभो, संकीर्तनानन्द में निमग्न चित्त भक्तों के साथ नवद्वीप को अलंकृत कीजिये। यह सुनकर निजनाम-विनोदी गौरहरि वहाँ गये।

नवद्वीप पहुँचकर मातृभक्त गौरचन्द्र ने भूमि पर लेटकर माँ की चरण-वन्दना की। माँ ने तुरन्त आनन्द से भरकर सब भूलकर उन्हें वक्ष से लगा लिया। वात्सल्यमयी शचीमाँ ने बार-बार मुख चुम्बन कर उन्हें वात्सल्यरस से अभिसिंचित किया और चारों प्रकार के द्रव्य तैयार कर पुत्र को भोजन करा सुख पाया। सकलरसगुरु श्रीगौरचन्द्र ने नित्यानन्द के साथ उन सब परम मधुर द्रव्यों का सेवन किया।

गौरप्रेम में सदैव अभिमत्त नित्यानन्द जययुक्त हों। वे सान्द्रानन्द-उज्ज्वल नवद्वीप में विराजमान हुए। नाना भावों से युक्त प्रणयीजनों के साथ अपने ईश्वर श्रीगौरांग की सेवा की। उन्हीं की नामावली के कीर्तन से त्रिभुवन के तापत्रय दूर किये।

**''नित्यानन्दो जयति सततं गौरप्रेमाभिमत्तः**
**सान्द्रानन्दोज्ज्वलमय नवद्वीपमालम्बमानः ।**
**नानाभावैः प्रणयिनिकरैः सेव्यमानो निजेशं**
**तन्नामामृतकीर्तनैस्त्रिजगतां तापत्रयं नाशयन् ।।''**

श्रीकृष्णचैतन्य 'प्रकाश'-रूप में अपनी श्रीमूर्ति में अपनी प्रिया (विष्णुप्रियाजी) के निकट विराजते हैं और लक्ष्मीस्वरूपा प्रियाजी भी उनकी यथोचित सेवा करती हैं। रसज्ञ गौरांग श्रीकृष्णसंकीर्तन में मग्नचित्त

नवद्वीपवासी भक्तों को लेकर गदाधर के साथ भी अहर्निश विहार करते हैं। श्रीवास आदि भक्तों के घरों में भी प्रभु स्वप्रकाश स्वरूप से कीर्तन का पूरा आनन्द प्रदान कर रहे हैं। वे विद्या-विनोद आदि कौतुकपूर्ण लीलायें करते हैं, तो श्रीधर के साथ नित्य प्रेमकलह भी करते हैं।

सर्वेश्वर नित्यानन्दगौरचन्द्र ने गौरीदास पंडित के घर शुभागमन किया। दोनों ने उनकी प्रीति से बँधकर अपनी-अपनी मूर्तियाँ रसमयी और सर्वशक्तिसम्पन्न कर उन्हें दीं। दोनों ने वहाँ उन श्रीविग्रहों के साथ नाना प्रकार का भोजन किया। गौरीदास ने भी उन सच्चिदानन्द विग्रहों को देखकर विशुद्ध सख्यरस से भरकर उनकी सेवा की है।

**"ताभ्यां सह भुक्तवन्तावन्नञ्च विविधं रसम् ।।**
**दृष्ट्वा द्वौ सच्चिदानन्दविग्रहौ द्विजसत्तमः ।**
**शुद्धसख्यरसेनापि सेवयामास सर्वदा ।"**

वेदों के अनुसार भगवान् के सभी श्रीविग्रह नित्य, शाश्वत और क्षय-वृद्धिरहित हैं। यही कारण है कि सभी लीला-विग्रह भक्तवत्सल परमानन्ददाता रूप में भक्तों के चित्त में सदा विराजते हैं।

**पंचदश सर्ग :** इसके पश्चात् जगद्गुरु कृष्णचैतन्य और नित्यानन्द प्रेमविह्वल होकर अद्वैत आचार्य के निवास पर पहुँचे। उन्हें सहसा आया देख महेश्वर अद्वैत आचार्य ने सगण उठ कर प्रेमविवश होकर दोनों के चरणकमल पकड़ लिये। विधिवत् श्रीचरण-प्रक्षालन कर चरणोदक पान किया, सिर से लगाया। इतना ही नहीं, अद्वैत आचार्य मत्त सिंह की तरह वस्त्र उड़ाते हुए नृत्य करने लगे-"**ननर्त वासो धुन्वानो मत्तकेशरिविक्रमः ।**"

गौर-नित्यानन्द उन्हें बार-बार आलिंगन-प्रणाम आदि कर, उनके द्वारा संपूजित होकर भोजन कर तृप्त हुए। परमेश्वर जगद्गुरुद्वय ने भक्तों द्वारा परिवेष्टित होकर नृत्य कीर्तनानन्द का आस्वादन किया।

अद्वैत आचार्य को सहसा बाह्यज्ञान हुआ, तो उन्होंने नवद्वीप से भक्तवृन्द के साथ शचीमाँ को लिवा लाने के लिये आदमी भेजा। वैष्णव-गृहणियों ने नाना प्रकार के खाद्यद्रव्य तैयार किये, प्रभु ने प्रसाद पाया। कृष्णप्रेमानन्द-सागर श्रीमाधवेन्द्रपुरी की आराधना तिथि चैत्र शुक्ला द्वादशी को अद्वैत आचार्य ने भक्तवृन्दसहित दोनों प्रभुओं को सानन्द-साग्रह

भोजन कराया, स्वयं प्रसाद पाकर आनन्द पाया। पुरी गोस्वामी के प्रेमरस में डूबकर गौर-नित्यानन्द ने भक्तवृन्द के साथ नृत्य कीर्तन किया।

माँ के वशीभूत दोनों भाइयों ने वहाँ एक दिन व्यतीत कर सबको सान्त्वना देकर प्रस्थान किया। उन महापुरुषों की लीला का वर्णन कौन करेगा? श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने पर व्रजवासी उन्हीं के चिन्तन में डूब गये थे। उसी प्रकार गौरहरि के चले जाने पर सभी वैष्णव उनके लीला-चरित्रों में तन्मय हो गये। गौर-नित्यानन्द कृष्ण-बलराम हैं और ये महत्तम वैष्णवगण कृष्णगत-प्राण व्रजवासी!!

पुरुषोत्तम क्षेत्र पहुँचकर भुवनैक बन्धु गौरहरि जगन्नाथदेव के मुखारविन्द दर्शन कर अपने स्वर्णविग्रह को प्रेमाश्रुधाराओं से अभिषिक्त कर रुद्धकण्ठ हो शोभा पाने लगे।

गौर-नित्यानन्द भक्तों के साथ काशी मिश्र के निवास पर पहुँचे। श्री सार्वभौम एवं अन्यान्य क्षेत्रवासी वहाँ आ गये। वे सब दोनों के चरणकमलों का वैभव दर्शन कर दण्डवत् लेटकर प्रणाम करने लगे। सब आनन्द से युक्त, कृष्णरस-समुद्र में डूबे, प्रेमाश्रुपरिपूर्ण, रुद्धकण्ठ और हाथ जोड़े! सबको सम्मान देने वाले प्रभुद्वय ने तुरन्त उठकर प्रेमानन्द से भरकर उन सबको आलिंगन किया और वृन्दावन का मधुर कथामृत पान कराया।

**षोड़श सर्ग :** राजा गजपति प्रतापरुद्र ने महाप्रभु के दर्शन की अभिलाषा से रामानन्द राय और सार्वभौम भट्टाचार्य को बुलवा कर बड़े आदर विनय और प्रेम से पूछा– अग्रज (श्रीनित्यानन्द) के साथ गौरचन्द्र के दर्शन कैसे हों, बताइये? सार्वभौम बोले– महाराज, आपके लिये उनके दर्शन प्राप्त करना बहुत कठिन है। प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकते, कोई अन्य उपाय करना होगा। महाराज, वे दोनों परमेश्वर जब कीर्तनानन्द में मत्त हों, तभी दर्शन कीजिये। इस पर राजा ने हँसकर बड़ी उत्कण्ठा के साथ कहा– ठीक है, शीघ्र ऐसी व्यवस्था कीजिये।

यह संवाद पाते ही कि परमेश्वरद्वय कीर्तन-आनन्द में उन्मत्त हैं, राजा ने जाकर करुणासागरद्वय के दर्शन किये। देखा कि गौर-नित्यानन्द दोनों प्रभुओं के श्रीअंग अश्रु-कम्प-पुलक आदि से मण्डित हैं, नासिकाओं से श्लेष्मा प्रवाहित है, मुखों से लार निकल रही है। देखकर राजा स्वयं

पुलकाश्रुओं से भर उठे। राजप्रासाद में आकर सुख से सो गये, तो स्वप्न देखा—कीर्तनविहारी गौर-नित्यानन्द रत्नसिंहासन पर विराज रहे हैं; तुरन्त ही वे प्रलम्बासुर-हन्ता मुर-अरि पूर्णविलासवैभवयुक्त कृष्ण-बलराम स्वरूपों में सुशोभित हैं। राजा 'यह क्या, यह क्या' कहते हुए व्यग्रभाव से भूमि पर दण्डवत् प्रणाम कर उठते हैं, तो पुनः कीर्तनविहारी स्वरूप देखते हैं। इस प्रकार स्वप्न में तीन बार दर्शन कर वे प्रेमविह्वल होकर रोने लगते हैं। निद्राभंग होने पर शीघ्र ही श्रीगौरांग-पादपद्मों के निकट जा पहुँचते हैं।

**''रत्नसिंहासनस्थौ च कीर्तनानन्दविग्रहौ।।**
**ततः प्रलम्बारिमुरद्विषौ सुखं**
**पश्यन् सदापूर्णविलासवैभवौ ।**
**किं किं ब्रुवन् भूमिपतन् सुनिर्भरं**
**पुनः समुत्थाय ददर्श तौ प्रभुः ।।**
**एवं स बारत्रयमेव स्वप्नं**
**दृष्ट्वा रुदन् प्रेमविभिन्नधैर्यः ।**
**ततः समुत्थाय जगाम सत्वरं**
**गौरांगपादाम्बुजयोः समीपकम् ।।''**

बार-बार साष्टांग प्रणाम किया। रह-रह कर भूमि पर पड़कर रोदन किया। सर्वेश्वर आदिपुरुष के श्रीचरण हृदय से लगा कर स्तव करने लगे—हे जगदीश! हे प्रेममय प्रकाश! सकलजन-निवास! हे आनन्दमय! हे शेषशायि! आपकी जय हो, जय हो! अपने भक्तों के मतिरूपी मत्तभृंगों द्वारा आपके चरणकमल चुम्बित हैं। हे दीनबन्धो! मुझ आर्त-विरही की रक्षा कीजिये।

**''जय जय जगदीश प्रेमपूर्णप्रकाश**
**सकलजननिवासानन्दभोगेन्द्रशायिन् ।**
**निजजनमतिमत्तभृंगचुम्बिस्वपाद-**
**सरसिज-विरहार्तं पाहि मां दीनबन्धो ।।''**

राजा ने इस प्रकार स्तुति की, तो महाविभूतिमय प्रभु ने उन्हें अपना श्रृंगाररसमय परम अद्भुत षड्भुज स्वरूप दिखाया—ऊपर दो हाथों में धनुष-वाण; मध्य हस्तों में वक्षस्थल को स्पर्श करती वंशी; नीचे दोनों

हाथ दिखा रहे हैं सुमधुर नृत्यभंगिमा! गौरचन्द्र की इस प्रेममयी छवि के दर्शन कर राजा प्रतापरुद्र को श्रीकृष्ण-बलराम की रासलीला की स्मृति जगी, तो वे अश्रु-पुलक से भरकर श्रीमद्भागवत (10/34) के श्लोक पढ़ते हुए नृत्य करने लगे।

**कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ।**
**विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ।।**
**उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ।**
**स्वलंकृतानुलिप्तांगौ स्रग्विनौ विरजोऽम्बरौ ।।**
**निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ।**
**जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमंगलम् ।।**

(श्रीकृष्ण-बलराम ने रात्रि में वन में गोपियों के साथ विहार किया। दोनों सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुशोभित, अंगराग से युक्त, वनमाला धारण किये। आकाश में तारे उग आये थे, चाँदनी छिटक रही थी। दोनों ने जगत् के सभी प्राणियों का मनःश्रवणमंगल गायन आरम्भ किया।)

षड्भुज श्रीशचीनन्दन को और रोहिणीनन्दन श्रीनित्यानन्दराम को देखकर सार्वभौम आदि पुलक-अश्रु से भर उठे, श्रीकृष्णगुणानुवाद में मग्न हो गये।

**सप्तदश सर्ग :** गौड़ीय भक्तवृन्द ने श्रीगौरांग-दर्शन के लिये नीलाचल जाने की सोची। जगद्गुरु ईश्वर श्रीमद् अद्वैत आचार्य अपने परिकरों के साथ, परमानन्द, पुंडरीकाक्ष विद्यानिधि-प्रेमनिधि, सद्गुणसम्पन्न गंगादास पंडित, वक्रेश्वर पंडित, भ्राताओं के साथ श्रीवास, आचार्यरत्न श्रीचन्द्रशेखर, प्रद्युम्न ब्रह्मचारी, हरिदास ठाकुर, द्विज हरिदास, वासुदेव दत्त, मुकुन्द दत्त, स्त्री-पुत्रों के साथ शिवानन्द सेन, गोविन्द घोष, सुगायक मुकुन्द, लेखक विजय, सदाशिव पंडित, पुरुषोत्तम संजय, श्रीमान् पंडित, श्रीनन्दन ब्रह्मचारी, शुक्लाम्बर, 'खोलाबेचा' नाम से प्रसिद्ध श्रीधर, लेखक पंडित, गोपीनाथ पंडित, श्रीगर्भ पंडित, वनमाली पंडित, जगदीश पंडित, हिरण्य नामक वैष्णव, बुद्धिमन्त खान, आचार्य पुरन्दर, राघव पंडित, वैद्यसिंह, मुरारि, गरुड़ पंडित, गोपीनाथ सिंह, श्रीराम पंडित, नारायण पंडित, दामोदर पंडित, रघुनन्दन ठाकुर, मुकुन्द-नरहरि-चिरञ्जीव-सुलोचन, रामानन्द बसु, सत्यराज आदि—ये सभी प्रेममय श्रीकृष्णचैतन्य-प्राण आचार्य प्रभु

(श्रीअद्वैत) के साथ पुरुषोत्तम क्षेत्र गये।

यह सुनकर कि भक्तगण नरेन्द्र सरोवर आ पहुँचे हैं, सर्वेश्वर गौरहरि ने तुरन्त अपने निकटस्थ भक्तों को भेजा। भक्तवश, भक्तप्राण, भक्तप्रीतिदाता प्रभु स्वयं भी पीछे-पीछे चल पड़े। उनके साथ गये— नित्यानन्द प्रभु, गदाधर पंडित, श्रीपरमानन्द पुरी, सार्वभौम भट्टाचार्य, जगदानन्द पंडित, काशी मिश्र, स्वरूप दामोदर, शंकर पंडित, काशीश्वर गोस्वामी, भगवान् पंडित, प्रद्युम्न मिश्र, परमानन्द पात्र, रामानन्द राय, द्वारपाल गोविन्द, ब्रह्मानन्द भारती, श्रीरूप-सनातन-रघुनाथ दास, वैद्य रघुनाथ, श्रीनारायणानन्द नामक आचार्यपुत्र के नन्दन, गौरांगप्राणवल्लभ अच्युतानन्द गोस्वामी, शिखि माहिती, वाणीनाथ तथा अन्यान्य क्षेत्रवासी। सभी नरेन्द्र सरोवर पहुँचे। दोनों गोष्ठियों का यह मिलन-दर्शन एक आनन्द महोत्सव था, जिसमें अश्रु-कम्प आदि भाव मूर्ति धारण कर प्रकट हुए।

**अष्टादश सर्ग :** भक्तवृन्द भावों से भर उठे, परमानन्द-विह्वल हो गये। हरिध्वनि कर साष्टांग प्रणाम करने लगे। वैष्णवों के साथ स्वयं ईश्वर ने भी वैष्णवों को प्रणाम कर सबको वैष्णव आराधना की विधि दिखाई। 'यदि सुदुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भजन करता है, तो उसे भी साधु समझो'—यह श्रीकृष्ण का श्रीमुखनिःसृत वचन है। लोकहित के लिये जगदीश्वर (गौरहरि) ने वैष्णवों की वन्दना की, क्योंकि इससे संन्यासी का गर्व नष्ट होता है।

सभी भक्त-वैष्णव अश्रु-कम्प-पुलक आदि से युक्त और धूलिमंडित होकर बार-बार नमन, नृत्य, कीर्तन करने लगे। दरअसल, वे गौरसुन्दर के दर्शन कर आनन्दोन्मत्त आत्महारा हो गये, बस 'जय गौरांग जय गौरांग' ध्वनि करने लगे।

उधर वैष्णव-गृहणियाँ दूर से प्रभु के दर्शन करने लगीं। उनके प्रेम की पराकाष्ठा को कौन जाने! कौन बखाने? उनके मुखों पर कृष्णनाम और शरीरों पर प्रेमाश्रु-पुलक सुशोभित थे। निःसन्देह वे श्रीहरिभक्ति-मंडित थीं।

उसी समय श्रीराम-कृष्ण और श्रीयात्रागोविन्द जलक्रीड़ा के लिये नरेन्द्र सरोवर आये। उन्होंने बड़े आनन्द से नौकाविहार किया। इधर गदाधर-रसोल्लासी, नित्यानन्द-सुखप्रद, अद्वैताचार्य-प्रेष्ठ, श्रीरूप-सनातन

-रघुनाथ के ईश्वर, मुरारि राम (दास) श्रीवास एवं गौरीदास के प्रिय, परमानन्द पुरी वंशी और रामानन्द के सहायक, काशीश्वर-मानदाता, हरिदास के प्रियंकर, विपिनेश्वर (वृन्दावन-नायक) शचीनन्दन गौरगोविन्द स्वप्रकाश रूप में स्वरूप दामोदर आदि के साथ द्वापर युग की यमुना-जलक्रीड़ा की तरह सानन्द जलकेलि करने लगे। हर कोई यही अनुभव करने लगा कि गौरांग केवल मेरे ही साथ जलक्रीड़ा कर रहे हैं।

जैसे रासरस-कौतुकी गोविन्द ने गोपियों के साथ यमुना में विविध क्रीड़ायें कीं और उनके विभ्रम से सुख प्राप्त किया, उसी प्रकार गौरांग राम-कृष्ण और यात्रागोविन्द जल-विहार कर सरोवर-तीर पर आये; सुअलंकृत-सुपूजित हुए।

श्रीराम-कृष्ण और श्रीयात्रागोविन्द नृत्य-वाद्य-संगीत आदि का आनन्द लेते स्वजनों के साथ मन्दिर चले गये। श्रीगौरांग भी भक्तों के साथ संकीर्तन करते हुए जगन्नाथ मन्दिर में पहुँचे। गरुड़स्तम्भ के सहारे खड़े होकर जगन्नाथदेव के दर्शन कर प्रेमविह्वल हो गये।

**ऊनविंश सर्ग :** नित्यानन्द प्रभु जगदीश्वर को पकड़े काशीनाथ के निवास पर पहुँचे। नित्यानन्द अद्वैत के साथ जगन्नाथ-महाप्रसाद आदि सेवन कर भक्त-संकल्प-पालक, वात्सल्यरस मूर्ति, दयानिधि प्रभु ने 'तुम यह खाओ, यह खाओ' कहकर भक्त-वैष्णवों को विविध द्रव्य खिलाये। तत्पश्चात् प्रभु ने क्रमशः नित्यानन्द और अद्वैत आदि गौड़देशीय भक्तवृन्द को तथा उत्कल-श्वेतद्वीप के वैष्णवों को माला-चन्दनादि से विभूषित किया।

राजा प्रतापरुद्र की आज्ञा से चन्दनेश्वर नामक महापात्र ने भक्तजनों के आवास की व्यवस्था की। वे सब संकीर्तन-विनोदी प्रभु के साथ रहने लगे। वे गौड़देश से प्रभु के प्रिय जो-जो द्रव्य अपने साथ लाये थे, वैष्णव-गृहणियाँ उनका रन्धन करतीं और अग्रज नित्यानन्द के साथ महाप्रभु उन चारों प्रकार के रसयुक्त घृतसिक्त अन्न-व्यंजनादि को खाते।

साक्षात् भगवान् अद्वैत ने अपनी पत्नी के साथ एकान्त में अपने प्राणनाथ भक्तवत्सल श्रीकृष्णचैतन्य को उत्तम सुमधुर क्षीर अन्नव्यंजन आदि खिलाये।

श्रीवास पंडित आदि ने भी अपनी पत्नियों की सहायता से श्रीगौरांग

भगवान् को अपने-अपने स्थान पर भोजन कराया।

श्रीअद्वैत गुसाँईं अपने परिकरों को बुलाकर गौरचन्द्र का नवीन नाम-कीर्तन करने लगे। वैष्णव-मण्डली के बीच अद्वैताचार्य आनन्द से भरकर परम उद्दण्ड नृत्य करते, कभी गर्जना करते, कभी दौड़ने लगते। जिनके नृत्यपदाघात से त्रिभुवन काँपने लगते हैं, वे भगवान् नित्यानन्द भी गौरांग-भाव से भरकर उनके साथ नृत्य-कीर्तन करते।

**''नित्यानन्दोऽपि भगवान् गौरांगभावभावितः ।**
**यस्य नृत्यपदाघातैः कम्पते भुवनत्रयम् ।।''**

'मेरे प्राणसर्वस्व गौरचन्द्र प्रभो! हे नित्यानन्दप्रिय गौर! हे गदाधर-रसप्रद! श्रीवासादिप्रियप्राण! हे प्रेमद! हे करुणासागर! मेरा उद्धार करो।'' इस प्रकार कीर्तन होता रहा। यह समझ कर कि कृष्ण-कीर्तन है कीर्तनप्रिय गौरहरि भी प्रेम से भरे वहाँ आ गये। उस कीर्तनानन्द से ब्रह्माण्ड भर गया। जैसे व्रज में वनभोजन-लीला में सखा बीच में बैठे श्रीकृष्ण को अपने-अपने सामने देखते थे, वैसे ही यहाँ सब ने गौरहरि को अपने आगे नृत्य करते देखा।

महातेजवान् नित्यानन्द ने प्रेमोन्माद में अद्वैत आचार्य के साथ नृत्य किया। अद्वैतप्रभु ने मत्त सिंह का विक्रम दिखाते हुए अवनीतल को नृत्य कीर्तन से भर दिया। जो साक्षात् गौरांग-प्रेमदाता हैं, उनके लिये इसमें विचित्र क्या? गौरांग-प्रीतिद गदाधर और गौरगतप्राण श्रीवास आदि भक्तगण ने भी बड़े आनन्द से नृत्य किया। जिनके हृदय में यह गौरगुणकीर्तन प्रवेश कर गया है, वही इसके साक्षी हैं; अन्य कोटि-कोटि महाज्ञानी इसे नहीं जान सकते।

**विंश सर्ग :** एक दिन गौरहरि ने दामोदर पंडित से कहा—सच बताओ, मेरी माँ की श्रीकृष्ण में दृढ़ भक्ति है? यह सुनते ही दामोदर क्रोध कर बोले—उन्हीं के प्रसाद से तुम्हें नित्यानन्दस्वरूपिणी कृष्णरसमयी भक्ति प्राप्त है। इस पर प्रभु ने दामोदर को आलिंगन कर करुण स्वर में कहा—हे बन्धो! तुमने बिलकुल सत्य कहा! मैं तो केवल गर्व करता हूँ। यहाँ मैं माँ की आज्ञा से ही रह रहा हूँ, इसमें सन्देह नहीं। उनका प्रेम ही मुझे बार-बार उनके निकट ले जाता है।

बहरहाल, प्रभु ने अग्रज और भक्तवृन्द के साथ परमानन्द से जगन्नाथ

देव की स्नानयात्रा के दर्शन किये। फिर 'अनवसर' में सन्तप्तचित्त से आलालनाथ जाकर हरिदेव के दर्शन किये। वहाँ सात दिन रहकर पुरी लौटकर जगदीश का नेत्रोत्सव देखा। भक्ताभिमानी भगवान् चैतन्य ने नित्यानन्द का हाथ पकड़कर भक्तवृन्द के साथ संकीर्तनरसानन्द में नृत्य किया। फिर सबके साथ अपने निवास पर आकर महाप्रसाद अन्न पाया। सदानन्दरस में महामत्त गौरहरि यथासमय महाविभूतिपूर्ण जगन्नाथ-बलराम की रथयात्रा दर्शन करने गये। बलराम, जगन्नाथ और सुदर्शन के साथ सुभद्रा को रथारूढ़ देखकर प्रभु नित्यानन्द के साथ बड़े हर्ष से प्रणत हुए। सुमेरु-सदृश तीनों रथों ने गुंडिचा मन्दिर की यात्रा आरम्भ की, तो अखिलभाव-भावित गौरचन्द्र भी अपने भक्तवृन्द के साथ आगे-आगे चलने लगे। जगन्नाथदेव का मुखारविन्द देखकर उन्हें कुरुक्षेत्र के विशाल वैभव का स्मरण हो आया। राधारानी के प्रेम में प्रमत्त होकर प्रभु हँसते-रोते बोले—हे नाथ! हे विभो! आओ, व्रजमण्डल चलें; वहाँ वृन्दावन है, मधुर वंशीध्वनि है। यह कहते हुए नृत्य-गायन के माधुर्यसागर में डूबे भक्तवृन्द-परिवेष्टित गौर मत्त गजराज की तरह जगन्नाथ-रथ के साथ गुंडिचा मन्दिर जा पहुँचे।

श्रीराम-कृष्ण गुंडिचा मन्दिर की स्वप्रकाश रत्नवेदियों पर सुख से विराज गये, यह देखकर प्रभु ने पूछा-तुम वृन्दावन आ गये ? और जगन्नाथ देव ने भी मानो समवेत जनता के स्वर में कहा—हाँ, आ गये। प्रभु उस रम्य वन प्रदेश में प्रवेश कर परम आनन्दित हुए और जगन्नाथ के भोग आदि का रस वैभव देखकर भक्तवृन्द के साथ संकीर्तन करने लगे। वृन्दावन-विलासी श्रीहरि की विलासलास्य तरंगों से भरी रासलीला का स्मरण कर श्रीराधा-रसमाधुरी-धारी गौरहरि ने श्रीनन्दनन्दन स्वरूप के आस्वादन में परम श्रीसौन्दर्य धारण किया।

**एकविंश सर्ग :** राजा गजपति प्रतापरुद्र द्वारा सेवित नीलाचलनाथ जगन्नाथदेव और बलराम नौ दिन गुंडिचा मन्दिर में विराजे। होरापंचमी एवं श्रीलक्ष्मीविजयोत्सव सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् गौरहरि भक्तवृन्द के साथ रथारूढ़ पुरुषोत्तमदेव का अनुगमन करते लौट आये। शचीनन्दन हरि ने पद्मावती-नन्दन नित्यानन्दराम और वैष्णववृन्द के साथ रत्नसिंहासन पर विराजमान् जगन्नाथदेव के दर्शन किये।

**—पौराणिक ध्यान—**

**''नीलाद्रौ शंखमध्ये शतदलकमले रत्नसिंहासनस्थं**
**सर्वालंकारयुक्तं नवघनरुचिरं संस्थितं चाग्रजेन ।**
**भद्राया वामभागे रथचरणयुतं ब्रह्मरुद्रादिवन्द्यं**
**वेदानां सारमेकं सकलगुणमयं ब्रह्म पूर्णं स्मरामि ।।''**

(नीलाचल में शंख के मध्य शतदल कमल पर रत्नसिंहासन पर सुभद्रा बलराम और सुदर्शन के साथ विराजित-अलंकारों से युक्त; नवघन श्यामल सुन्दर; ब्रह्मा रुद्र आदि द्वारा वन्दनीय, वेदों के सारस्वरूप, सर्वगुणसम्पन्न पूर्ण-ब्रह्म को स्मरण करता हूँ।)

गौरहरि इस प्रकार जगन्नाथदेव का ध्यानकर काशी मिश्र के पुष्पोद्यान में चले गये। यथासमय प्रभु ने शचीमाँ के सुख की बात सोचकर गौड़देशीय भक्तवृन्द को विदा करते हुए कहा—वे श्रीहरिभक्तिस्वरूपिणी प्रेमवती हैं, तुम लोग उनके निकट जाओ। नित्यानन्द को आलिंगन कर उनके दोनों हाथ पकड़कर गद्गद् स्वर में बोले—तुम मेरे एकमात्र विश्वासपात्र हो। सब करने में समर्थ हो। तुम गौड़देश जाओ। मूर्ख, नीच,जड़, अन्ध को— पातकियों को कृष्णप्रेम का अधिकारी बनाओ।

नित्यानन्द ने हँसकर उत्तर दिया—प्रभो, मैं तुम्हारा नर्तक हूँ; तुम सूत्रधर हो; जो आज्ञा होगी वही करूँगा—''**नर्तकोऽहं तव प्रभो। करिष्यामि यथाज्ञा ते यतस्त्वं सूत्रधारकः।।**''

स्वरूप दामोदर, श्रीपरमानन्द पुरी, रामानन्द आदि की उपस्थिति में इस प्रकार दोनों के बीच वार्ता चल रही थी कि द्रविड़देश का एक दरिद्र बुद्धिमान ब्राह्मण आया। वह धन की आशा से जगन्नाथ-दर्शन के लिये आया था। जगन्नाथदेव के आगे अपना निवेदन प्रस्तुत कर सात दिन से धरना दिये पड़ा था। जगन्नाथजी ने नहीं सुनी, तो दु:खी होकर समुद्र के किनारे जा पहुँचा। दैवयोग से वहाँ पधारे विभीषणजी को देखा। बोला—''आप कौन हैं?'' नवागन्तुक ने कहा—''मेरा नाम विभीषण है।'' यह कहकर वे चल पड़े। वह महाभाग्यवान् ब्राह्मण भी उनके साथ चलने लगा।

विभीषणजी ने गौरहरि के निकट पहुँचकर उनके श्रीचरण-कमलों में दण्डवत् प्रणाम किया।

**''आगतो गौरचन्द्रस्य समीपं श्रीविभीषणः ।**
**दृष्ट्वा श्रीचरणद्वन्द्वं तस्य दण्डनतिर्भुवि ।।''**

वह ब्राह्मण यह चमत्कार देखकर प्रेम से भर उठा और अपनी दरिद्रता के दु:ख की श्लाघा कर बड़े कौतूहल के साथ नृत्य करने लगा। वांछाकल्पतरु भगवान् प्रभु विभीषणजी से बोले– आप इस ब्राह्मण को धन देकर इसका मनोरथ सिद्ध कीजिये। विभीषणजी ने हाथ जोड़कर प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य की।

इस पर ब्राह्मण बोला– हे जगद्‌गुरो! मेरा और त्याग न कीजिये। ऐसा कीजिये कि मुझे आपके श्रीचरण प्राप्त हों। जगन्नाथ! हे हृषीकेश! संसार-सागर -तारक! तुम पतितों के प्रेमदाता कृष्ण हो, मेरा उद्धार कीजिये।

ब्राह्मण की बात सुनकर करुणासिन्धु बोले– अब तुम अपने घर जाओ, विषय-भोग करो, फिर उनका परित्याग कर सदा श्रीकृष्णचरण भजो। श्रीकृष्णभजन से भक्ति प्राप्त करोगे, प्रेम सम्पदा भी मिलेगी। तब वह ब्राह्मण प्रभु को प्रणाम कर अपने घर चला गया। प्रभु की स्तुति कर, बार-बार प्रणाम कर उनके पादपद्मों का ध्यान करते हुए विभीषणजी भी चले गये।

**द्वाविंश सर्ग :** भक्तवृन्द-परिवेष्टित गौरहरि ने सुहास्यवदन से नित्यानन्द से पुन: कहा– मैंने जो कहा है, वह करना होगा। तुम गौड़देश जाओ। यह सुनकर नित्यानन्द ने हँसते हुए गौड़-यात्रा की।

नित्यानन्द पानिहाटि श्रीराघव पंडित के घर पहुँचे। राघव ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया, तो उन्होंने राघव को गोद में लेकर कहा– राघव, शीघ्र सुवासित जल से मेरा अभिषेक करो; पुष्प-चन्दन से, सोने-चाँदी-मूँगा मणिमुक्तादि के आभूषणों से सुसज्जित करो ताकि मेरे प्राणनाथ सच्चिदानन्दमय गौरचन्द्र की इच्छा पूरी हो।

राघव ने तुरन्त ही सुरधुनी का सुगन्धी जल मँगवाकर उन्हें सानन्द स्नान आदि करा, विविध अलंकार एवं माला-चन्दनादि धारण करा दण्डवत् प्रणाम किया। सर्वालंकार-भूषित कृष्ण-बलराम वंशी-वेणु-शिंगा आदि से युक्त श्रीदाम इत्यादि गोप-बालकों से घिरे रहते थे। उसी प्रकार कीर्तनप्रिय श्रीरामदास, सुन्दरानन्द, गौरीदास आदि भक्तवृन्द

नित्यानन्द के साथ विहार करते। भगवान् नित्यानन्दराम उनके साथ जाह्नवी-जल में क्रीड़ा करते; घर-घर में ताण्डवनृत्य करते। वे गदाधर दास के घर पहुँचे, तो उन्हें देखकर गदाधर गोपीभाव से भर उठे।

एक दिन सप्तग्राम जा पहुँचे। त्रिवेणी-तट पर गोपीभाव से भरकर गौरांग-गुण कीर्तन और नृत्य किया। जिस स्थान पर सप्तर्षि भाव से भरकर श्रीनारायण के पादपद्मों का चिन्तन करते हैं, जिसे वेदज्ञ मुक्तवेणी कहते हैं, गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम होने के कारण लोग जहाँ उत्सव मनाते हैं और जहाँ स्नानादि करने से सर्वदुःख-विनाशिनी हरिभक्ति प्राप्त होती है—उसी त्रिवेणीतट पर नित्यानन्द प्रभु वणिकों के घर-घर श्रीकृष्णचैतन्य का नाम-संकीर्तन करने लगे। जो संकीर्तन आनन्द पहले नवद्वीप में होता था, वही परमानन्द नित्यानन्द-प्रसाद से यहाँ होने लगा।

जगद्‌गुरु नित्यानन्द कुछ दिन उद्धारण के घर रहे, फिर उनके साथ गौरचन्द्र-रस में डूबकर शान्तिपुर पहुँचे। महामति श्रीअद्वैत ने नित्यानन्द को देखकर हुंकार से दसों दिशायें भर दीं, बड़े आनन्द से उनका स्तुति-स्तव किया, बार-बार नमस्कार किया। नित्यानन्दप्रभु भी उन्हें आलिंगन-प्रणाम कर सुखी हुए। तत्पश्चात् गौरांगगुणोन्मत्त जगदानन्द नित्यानन्द नवद्वीप गये।

**त्रयोविंश सर्ग :** श्रीशचीमाता के दर्शन को उत्सुक नित्यानन्द सबसे पहले उन्हीं के पास पहुँचे। चरणों में प्रणत होकर बोले—माँ, मैं आ गया। यह सुनते ही माँ ने उनके सिर से दोनों हाथ लगाकर 'तात! तात' कहकर बार-बार चुम्बन किया। मधुर स्वर में बोलीं—वत्स, तुम मेरे ही घर रहो, ताकि मैं दुःख-विनाशक तुम्हें सदा देख सकूँ। उन्होंने भी हँसते हुए उत्तर दिया—माँ, सुनो, सच कहता हूँ, मैं अनुज विश्वम्भर के साथ तुम्हारे पास सदा ही रहता हूँ। माँ, तुम रसोई कर ठाकुर को भोग लगाकर प्रसाद देती हो, उसी लोभ से मैं सदा तुम्हारे पास ही रहूँगा।

**"मातः शृणु सत्यं वदामि ते ।**
**वसामि सानुजोऽहं ते सदा सन्निहितोऽपि च ।।**
**त्वया पाचितमन्नं यत् श्रीकृष्णाधरपूरितम् ।**
**तल्लोभेन सदा मातस्तिष्ठामि तव सन्निधौ ।।"**

यह सुनकर माँ सहास्यवदन विविध खाद्य द्रव्य उनके आगे रखकर

उनके मुखकमल की ओर देखती रहीं। भक्तवत्सल नित्यानन्द भी अपने अनुज विश्वम्भर (महाप्रभु) के साथ प्रसाद पाने लगे। श्रीराम-कृष्ण दोनों भाइयों ने भोजन किया, यह देखकर माँ सुख-सिन्धु में डूब गईं। उनकी वह स्थिति देखकर दयानिधि नित्यानन्द ने पूछा— माँ, अब बताओ, मेरी बात सच है कि नहीं ? और वे बोलीं— वत्स, ईश्वर-वाक्य की तरह तुम्हारे वचन सत्य हैं। फिर भी, मैं अनुज के साथ तुम्हें सदा देखना चाहती हूँ। नित्यानन्द ने कहा— माँ, जिसमें तुम्हें सुख हो, वही मेरा कर्तव्य है।

सर्वसुखप्रद नित्यानन्द नवद्वीपवासियों को परम आनन्द पहुँचाते रहने लगे। वे सबको कृष्णचैतन्य-रस में निमग्न किये रहते; गौरांग-कीर्तन के आनन्द में भक्तवृन्द के साथ नृत्य करते। वे नीलवस्त्र धारण करते; गन्ध-चन्दनादि से चर्चित रहते। एक कान में कुण्डल होता, कण्ठ में रहती वनमाला। सोना-चाँदी-मूँगा आदि के अलंकारों से विभूषित रहते। कौस्तुभ धारण करते। श्रीमुखकमल कर्पूर ताम्बूल आदि से युक्त रहता। वेणु और लौहदण्ड रखते। सदा गौरांगगुण-कीर्तन करते।

आततायी चोर-दस्युओं ने उनके आभूषण चुराने के विविध प्रयत्न किये, किन्तु नित्यानन्दप्रभु ने करुणा कर उन्हें गौरांग-कीर्तन आनन्द से भर दिया। नित्यानन्द ने कृष्णचैतन्य-रस से भरकर गोपबालकों की विविध क्रीड़ायें कीं। एक दिन बड़ोगाछि-निवासी कृष्णदास के घर जा पहुँचे। वे दुष्प्राप्य ईष्वर को अपने घर देखकर आनन्द से आकुल हो गये और वस्त्र उड़ाते हुए नृत्य करने लगे। यह बड़ोगाछि गाँव नित्यानन्द की विहारभूमि होने के कारण परम पुण्यतम है। रामदास आदि भक्तों से घिरे नित्यानन्द इन कृष्णदास के साथ कीर्तन-आनन्द करते नवद्वीप गये। जैसे नन्दव्रज में बलराम गोपबालकों के साथ विहार करते, वैसे ही अब नवद्वीप में नित्यानन्दराम श्रीकृष्णचैतन्य-नाम से त्रिभुवन को परिपूर्ण कर विराजते। बेंत, वंशी, सिंगा, गुंजामाला आदि से सुशोभित कृष्णकीर्तन-सुधावर्षी पार्षदों से घिरे गौरांग-प्राणवल्लभ नित्यानन्द वृन्दावन-विलासी बलदेव स्वरूप प्रकट कर नवद्वीप-विहार करने लगे।

**चतुर्विंश सर्ग :** पुरी में श्रीराधाभावमाधुर्य से भरे गौरचन्द्र स्वरूप आदि भक्तवृन्द से घिरे रहते। उनका देहदैहिकादि का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। वे रामानन्द के साथ कृष्णमाधुर्य-वैभव का स्वयं आस्वादन करते

और भक्तों को कराते। स्थानीय वन-उपवन आदि देखकर उन्हें वृन्दावन की स्मृति जगती और वे कृष्ण को खोजने लगते। वे समुद्र में यमुना देखकर कूद पड़े। स्वरूप आदि से श्लोक-पद क्या सुने, कृष्ण के रूप-रस आदि पाँच गुणों ने उनकी पाँचों इन्द्रियों को आकृष्ट कर लिया। गायों के बीच गिरकर उनकी कूर्म-आकृति हो गई। रासलीला की स्मृति के फलस्वरूप प्रलाप करने लगे। चटक पर्वत को गोवर्धन मान बैठे। गोपीभाव से भरकर श्रीकृष्ण के अधरामृत का आस्वादन किया। मथुरा की स्मृति मात्र से प्रेमरसस्वरूप स्वयं भगवान् गौरांग दिव्योन्माद से भर जाते। उनके श्रीअंग में अष्ट सात्विक भाव एक साथ प्रकट होते, तो स्वरूप-रामानन्द रासलीला के श्लोक सुनाकर उनकी चेतना लौटाते।

ये दोनों महानुभाव प्रभु के भाव के अनुरूप श्लोक और रासलीला-कीर्तन आदि सुनाते। रसविग्रह प्रभु उस कर्ण-रसायन अति अद्भुत लीला का निरन्तर पान करते। प्रभु सच्चिदानन्दघन राधाकान्त होकर भी सदा राधाभाव से विभावित आनन्दरसमग्न रहते। सर्वेश्वरेश्वर गौरकृष्ण ने जो-जो लीलायें कीं, उनका वर्णन उनके कृपापात्र के अतिरिक्त और कौन कर सकता है? भक्तभाव-विभावित प्रभु रामानन्द, स्वरूप, परमानन्द पुरी, काशीश्वर, वासुदेव, गोविन्द एवं अन्यान्य रसिकजनों द्वारा सेवित होते।

उधर ईश्वर श्रीनित्यानन्द नवद्वीप में श्रीचैतन्य-नाम-गुण कीर्तन करते हुए श्रीचैतन्यरसोन्मत्त रहते। वे गौरगुण-गर्वीले थे। प्रभु के आज्ञा-पालन के लिये उन्हीं की प्रकाशमूर्ति के रूप में विराज रहे थे। वे स्वेच्छामय रसज्ञ पुरुष एक दिन प्रभु के दर्शन की उत्कण्ठा से नीलाचल चल पड़े। भला उनके मन की बात कौन जान सकता है? पुष्प वाटिका पहुँचकर श्रीगौरसुन्दर का ध्यान करने लगे। उठें और दण्डवत् प्रणाम करें। इस प्रकार बार-बार किया। हुंकार और 'जय गौरांग' ध्वनि के साथ प्रभु की स्तव-स्तुति की। तब कृष्ण-राम (गौर-नित्यानन्द) परमेश्वर युगल ने प्रेमभक्तिरस से आकृष्ट होकर एक-दूसरे का अभिवन्दन किया।

प्रभु ने नित्यानन्द से कहा—हे नन्दसुत! तुम सदा नन्दगोष्ठभक्ति प्रदान करते हो। तुम्हारा शरीर तो कृष्ण-क्रीड़ासुखसागर है, और इस देह में अलंकार रूप में नवधा भक्ति विराजती है। गोकुल-वासियों की भक्ति

सुदुर्लभ है; कदाचित कोई विशुद्धभावापन्न व्यक्ति ही उसे प्राप्त करता है। तुम वही भक्ति बड़े प्रेम से स्वेच्छा से स्त्रियों और बच्चों को दे रहे हो। ऐसा दाता और कौन है?

**"श्रीशचीनन्दनः प्राह श्रीनित्यानन्दमीश्वरम् ।**
**नन्दपुत्र भवान्नन्दगोष्ठभक्तिप्रदः सदा ।।**
**अलंकारादिरूपेण नवधा भक्तिमुत्तमाम् ।**
**पश्यामि तव देहे च कृष्णकेलिसुखार्णवे ।।**
**नन्दगोकुलवासिनां भक्तिरेव सुदुर्लभा ।**
**भाव्यते शुद्धभावैश्च लभ्यते वा नरैः क्वचित् ।।**
**तां भक्तिं त्वंच प्रीत्या हि स्त्रीबालादिभ्यः स्वेच्छया ।**
**ददासि को भवांस्तत्र दातास्तीति वदाशु मे ।।"**

गौरहरि की बातें सुनकर नित्यानन्दप्रभु हँसकर बोले—दाता, हर्ता, रक्षक, जीवों के प्रति करुण, तुम्हीं तो सभी के प्रेरक हो।

एक सपार्षद नित्यानन्द, दूसरे स्वरूप आदि से परिवेष्टित विश्वम्भर गौरहरि—ये दोनों ही प्रेमपूर्ण आनन्दविग्रह हैं। गदाधर के साथ दोनों निरन्तर सेवित हैं और हरिकीर्तनानन्द में विह्वल रहते हैं।

यशोदानन्दन, कृष्ण, गोपीप्राणवल्लभ, राधारमण, रामानुज, रासरसोत्सुक, रोहिणीनन्दन, यज्ञ, राम, बल, हरि, रेवतीप्राणनाथ, रासकेलिमहोत्सव—यह नामावलि श्रीकृष्णचैतन्य और नित्यानन्दराम भक्तवृन्द के साथ गाते रहते हैं। इन दोनों प्रभुओं का स्मरण करो।

**पंचविंश सर्ग :** हे द्विज (दामोदर पंडित)! मैंने सूत्र रूप में श्रीकृष्ण (चैतन्य) चरित बताया। इस ग्रन्थ में बार-बार श्रीगौरांग महाप्रभु का वर्णन है। फलास्वाद के लिये अनुक्रम बताता हूँ—

श्रीकृष्ण-अवतार का कारण और उनकी चेष्टा; बहिर्मुख लोगों को देखकर नारद का अनुताप; नारद का वैकुण्ठ-गमन और श्रीकृष्ण द्वारा सान्त्वनाप्रदान; सभी अवतारों का वर्णन, श्रीकृष्णजन्म। बाल्यलीला, ब्राह्मण का अन्न खाना, नित्यानन्दस्वरूप विश्वरूप का संन्यास, जगन्नाथ का संस्थान, विद्याविलास, माँ का दुःखमोचन, लक्ष्मी-परिणय, पूर्व बंग-गमन, लक्ष्मीदेवी की संस्थिति, शचीमाँ का शोकनाश, विष्णुप्रिया-परिणय, परमानन्द वैभव, ईश्वरपुरी से भेंट, गया यात्रा। (प्रथम प्रक्रम)

भाव-प्रकाश, वराहवेश, संकीर्तन-शुभारम्भ, मेघ-निःसारण, नाम में अर्थवादकल्पना सुनकर गंगा में कूदना, भक्तवृन्द की अधीनता में अद्वैताचार्य से भेंट, भक्तानुग्रह, श्रीनित्यानन्द के दर्शन, षड्भुज मूर्ति का दर्शन-आनन्द, बलरामभाव, भक्तिरस से आकृष्ट होकर मन्दिर-मार्जन, भक्त द्रव्य ग्रहण करना, महा ऐश्वर्य-प्रकाश, नृत्य-गायन-विलास, गंगानिमज्जन, ब्राह्मण के शाप से जीवन-निस्तारक वरप्राप्ति, बलराम आवेश में मधुपान नर्तन, गोपीवेश में नृत्यगीत, संन्यास की सूचना, मुरारिगुप्त आदि को सान्त्वना। (द्वितीय प्रक्रम)

नवद्वीप और कण्टक-नगरवासियों का विलाप, संन्यासी नाम, प्रेमानन्द, राढ़देश-भ्रमण, चन्द्रशेखर आचार्य को नवद्वीप-प्रेरण, नित्यानन्द द्वारा भक्तों का दुःख-निवारण, भक्तवृन्द के साथ शान्तिपुर-विलास, दण्डभंग, गोपीनाथ वराहदेव एवं विरजादेवी के दर्शन, वैतरणी-तट पर याजपुर ग्राम में शिवलिंग-दर्शन, नाना भाव प्रकाश, श्रीभुवनेश्वर-दर्शन, शिव-निर्माल्य विषयक विधान, श्रीमन्दिर के गोपाल के दर्शन और प्रभु का रोदन, मार्कण्डेय सरोवर-तट पर शिवलिंग-दर्शन, श्रीजगन्नाथदर्शन, सार्वभौम आदि के साथ पुनः मुखारविन्द-दर्शन, महाप्रसाद-वन्दन-सेवन, सार्वभौम-उद्धार, दक्षिण-यात्रा, कूर्मनाथ-दर्शन, कूर्मविप्र पर कृपा, वासुदेव-उद्धार और शक्तिसंचार, जियड़नृसिंह प्रसंग, रामानन्द राय-मिलन, परमानन्द पुरी से भेंट, पंचवटी रंगक्षेत्र और श्रीरंगनाथ-दर्शन, सेतुबन्ध में श्रीरामेश्वर-शिव-दर्शन, श्रीजगन्नाथ-दर्शनानन्द; वृन्दावन के उद्देश्य से गौड़-गमन, वाचस्पति के घर अद्भुत वैभव-प्रकाश, देवानन्द को निमित्त बनाकर श्रीभागवतमहिमा-कीर्तन, भागवत-वक्ता-श्रोता लक्षण, नृसिंहानन्द द्वारा मानसिक मार्ग-रचना, प्रभु की रामकेलि तक यात्रा, पुनः श्रीअद्वैत-भवन आगमन, पुनः नवद्वीपवासियों से भेंट, भोजन-सुख, माँ की चरण-वन्दना, नीलाचल आगमन; श्रीगोपीनाथ दर्शन। (तृतीय प्रक्रम)

**षड्विंश सर्ग** : प्रभु के वृन्दावन-गमन पर भक्तवृन्द का विलाप और प्रभु द्वारा सान्त्वना-प्रदान, वन-मार्ग से यात्रा, काशी-विश्वेश्वर-दर्शन, तपन मिश्र आदि से मिलन, प्रयाग में माधव-दर्शन, अग्रवन (आगरा) रेणुका तीर्थ एवं मथुरा के दर्शन, कृष्णदास के साथ घाट-कूप आदि दर्शन, वृन्दावन-द्वादशवन गाँव-कुण्ड आदि के दर्शन, कृष्ण की

विविध लीलाओं का प्रकाश, लीलानुकरण, कृष्ण-जन्म से कंसवध तक की लीलाओं का श्रवण और उन रूपों का प्रकाशन, भावोन्माद आदि का अद्‌भुत वर्णन, व्रजवासियों के घर-घर में कृष्ण-लीला प्रकाशन, पुनः प्रयाग-प्रत्यावर्तन और श्रीरूप से मिलन, काशी में सनातन प्रभु से मिलन, काशीवासियों का उद्धार-निर्मलीकरण, तक्र-पान, नवद्वीप शुभागमन, नवद्वीप में नित्यविहार, गौरीदास पंडित के घर अवस्थान, पुनः अद्वैताचार्य के घर, भक्तवृन्द का उल्लास, माँ की चरण-वन्दना, माधवेन्द्रपुरीपाद की तिथि-आराधना, पुनः नीलाचल-गमन, प्रतापरुद्र-संत्राता, रथयात्रा, नरेन्द्रसरोवर पर भक्तमिलन-हरिकीर्तन, भक्त-दत्त द्रव्यों का भोजन, अद्वैतप्रभु द्वारा गौर-गुण-कीर्तन, रामदास पर कृपा, नित्यानन्द का विहार-गौरांगगुणकीर्तन, प्रभु के दिव्योन्माद आदि भाव, स्वरूप-रामानन्द आदि द्वारा रासलीला-कीर्तन, गौरांग-दर्शन, गुंडिचा-पुष्पोद्यान में श्रीनित्यानन्द की विद्यमानता, भक्तवृन्द-समन्वित श्रीगौरनित्यानन्द का गदाधर के साथ सहअवस्थान वर्णन। (चतुर्थ प्रक्रम)

बुधगण इस प्रकार श्रीकृष्णचैतन्य चरित का चिन्तन करते हुए विशुद्ध प्रेमामृत-सिन्धु में निमग्न रहते हैं। प्रभु स्वयं ईश्वर होकर भी भक्तिरसाश्रय लेकर अपने अद्‌भुत प्रेम और नाम की माधुरी का रसास्वादन करते हैं। उनकी लीला का आस्वादन कर क्या प्रेमसम्पदा प्राप्त नहीं होगी? अतएव निर्मत्सर होकर उनका (चरित्र) कीर्तन सुनो।

**"ईश्वरोऽपि स्वयं कृष्णो यतो भक्तिरसाश्रयः ।**
**आस्वादयति स्वप्रेमनाममाधुर्यमद्‌भुतम् ।।**
**तल्लीलास्वादनादेव किं न स्यात् प्रेमवैभवम् ।**
**अतो निर्मत्सरो भूत्वा शृणु गौरांगकीर्तनम् ।।"**

प्रस्तुत ग्रन्थ में चार प्रक्रम, अठहत्तर सर्ग हैं—(प्रथम प्रक्रम में 16, द्वितीय में 18, तृतीय में 18, चतुर्थ में 26)। श्लोक संख्या 1927 है। इन श्लोकों का आदरपूर्वक पाठ करने से रसिकजन प्रेमपूर्ण होंगे, सुनने से भी भावपूर्ण होंगे।

श्रीदामोदर पंडित श्रीनित्यानन्द-गौरांगगुण-कीर्तन सुनकर मुरारि गुप्त को प्रणाम कर बोले—मैं कृतार्थ हुआ, कृतार्थ हुआ, इसमें सन्देह नहीं। तुम धन्य हो, कृष्णचैतन्य-रस-पूरक हो। श्रीअद्वैतप्रभु भी

श्रीलगौरांगचन्द्र की सुमधुर लीलारत्नराशि सुनकर हर्षित होकर श्रीमुरारि से बोले—तुम श्रीरामचन्द्र के परम भक्त हो, इसलिये यह ग्रन्थरत्न तुम्हारे द्वारा ही प्रकाश में आया है। श्रीराम ही गौरस्वरूप में प्रादुर्भूत हुए हैं, इसलिये उन्होंने इस ग्रन्थ के माध्यम से प्रेममाधुर्य की पराकाष्ठा व्यक्त की है। परम रसिक जन इसे सुनकर मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं।

श्रीवास पंडित इस ग्रन्थ का आस्वादन कर बड़ी उत्सुकता के साथ प्रेम गद्गद् कण्ठ से बोले—तुमने जगत् को बन्धन मुक्त करने के लिये भगवान् हरि का लीलाचरित रचा है, जिसे सुनकर सब भय-मुक्त होंगे।

**"त्वमेव जगतां बन्धमोक्षाय कृतवान् हरेः ।**
**लीलां भगवतो ग्रन्थं श्रुत्वा मुच्येज्जनो भयात् ।।"**

इस प्रकार सभी भक्त इस अद्भुत ग्रन्थ को सुनकर मुरारि को प्रणाम कर परस्पर उन्हीं के विषय में बात करने लगे। मुरारि भी विधिवत् उन सबके चरणकमल पकड़कर प्रणत होकर प्रेम से 'जय कृष्णचैतन्य राम' कहते हुए नृत्य और रोदन करने लगे। वे सब एक-दूसरे को आलिंगन कर गौरांग-रस से भर गये। श्रीपति गौर ने जगत् के हित के लिये यह सुरहस्यपूर्ण लीला प्रकाशित कराई है।

★★★

## श्रीपाद मुरारि गुप्त की दृष्टि में महाप्रभु

('कड़चा' के कुछेक अंश)

1. जो अज, पुराण पुरुष हैं; शंख-चक्र-गदा—पद्मधारी चतुर्भुज हैं; जिनके वक्ष पर श्रीवत्स चिह्न है...., उन्हीं चैतन्य-हरि को प्रणाम... (1.1.14)

2. कलियुग में कीर्तन ही धर्म है यह जानकर साधुवृन्द को सुख देने के लिये स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। (शुक्ल, यज्ञ, पृथु, चैतन्य) ये सभी युगावतार ⋆ हैं। (1.4.25.27)

---

⋆ महाप्रभु चैतन्य स्वयं भगवान् हैं। जब स्वयं भगवान् का अवतरण धरा पर होता है, तो उनमें युगावतार का भी प्रकाश रहता है। इसलिये स्वयं भगवान् को भी युगावतार कहा जाता है। —सम्पादक

3. कटवा की विदुषी स्त्रियाँ--"गोपीभाव--विभावित नन्दनन्दन ही स्वयं आविर्भूत हुए हैं; अब संन्यासी बनकर अपना कार्य करेंगे।" (3.1.18)

4. श्रीपरमानन्द पुरी महाप्रभु से—"आपने साक्षात् भगवान् होकर भी श्रीकृष्णभक्त रूप धारण किया है और आप राधाभाव से पूर्ण होकर माधुर्यरसलोलुप बने हैं, यह मुझसे छिपा नहीं है।" (3.15.23)

5. निताइ–गौर सर्वेश्वरयुगल ने गौरीदास पण्डित के प्रेम से बँधकर अपनी सर्वरसाढ्य सर्वशक्तिसम्पन्न मूर्तियाँ दीं; उन श्रीमूर्तियों के साथ बैठकर भोजन किया। (4.14.12–15)

6. महाविभूतिमय जगत्पति प्रभु ने स्तवकारी राजा प्रतापरुद्र को अपने शृंगाररसमय वैभवपूर्ण परम अद्‌भुत षड्भुज रूप के दर्शन कराये। (4.16.13)

★★★

## प्राप्ति-स्थान

**श्रीराधारमण निवास**
छटीकरा रोड, आइ. ओ. पी. के सामने,
रमणरेती, वृन्दावन-281121

**श्रीविपिन प्रकाश अग्रवाल**
ए-8, दादा नगर, कानपुर

**श्रीराधा खण्डेलवाल ग्रन्थालय**
अठखम्भा, वृन्दावन

**प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र**
ए-3, आर्यनगर, मुरलीपुरा
जयपुर - 302023

★★★